वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

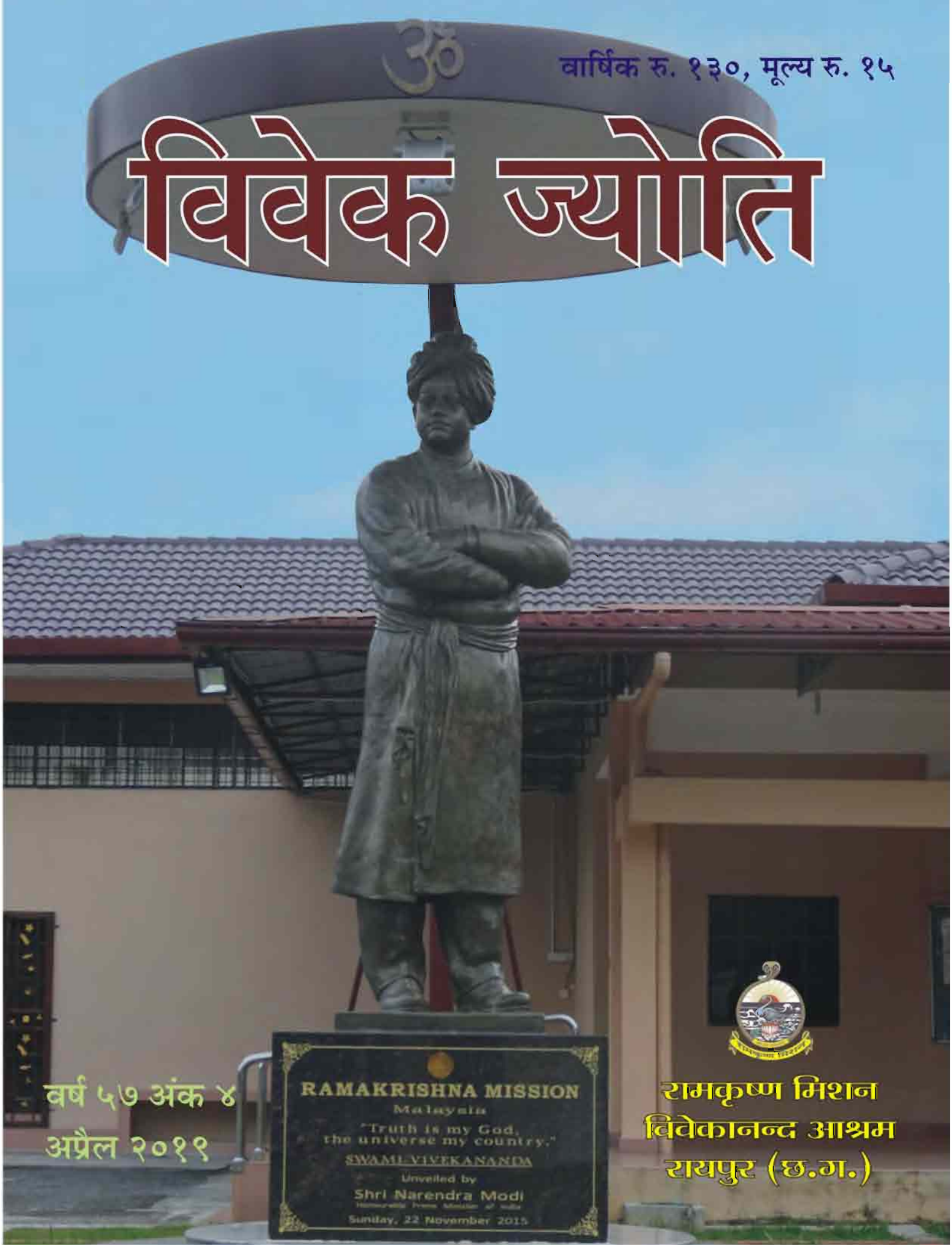

वर्ष ५७ अंक ४
अप्रैल २०१९

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २०१९

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५७
अंक ४

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. हनुमत्-वन्दना १४९
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) १४९
३. सम्पादकीय : युवा-शक्ति के दो महान आदर्श-पुरुष : श्रीहनुमानजी और ... १५०
४. ऐसी बानी बोलिए (स्वामी ओजोमयनान्द) १५२
५. साधुओं के पावन प्रसंग (४) (स्वामी चेतनानन्द) १५५
६. निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२८) १५७
७. यथार्थ शरणागति का स्वरूप (६/२) (पं. रामकिंकर उपाध्याय) १५९
८. (युवा प्रांगण) श्रीरामचन्द्र के जीवन में विनम्रता (स्वामी मेधजानन्द) १६२
९. मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१६) (स्वामी अखण्डानन्द) १६३
१०. अहिंसा परमो धर्मः (स्वामी ब्रह्मेशानन्द) १६५
११. सारगाछी की स्मृतियाँ (७८) (स्वामी सुहितानन्द) १६९
१२. (बच्चों का आँगन) हनुमान जी की शिक्षा १७१
१३. मूर्तिकार श्रीरामकृष्ण (स्वामी शुद्धिदानन्द) १७२
१४. मुण्डक-उपनिषद-व्याख्या (१०) (स्वामी विवेकानन्द) १७४
१५. जय हो! जय हो! अंगारमोती मइया १७६
१६. आध्यात्मिक जिज्ञासा (४०) (स्वामी भूतेशानन्द) १७७
१७. विविध भजन
घर घर आनन्द छायो (स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती) हे राम अब उन्मुक्ति पाना चाहता हूँ (डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी) १७८
१८. भगवतीस्तुतिः (सत्येन्दु शर्मा) १७९

१९. भूख न जाने धर्म की बात
(सीताराम गुप्ता) १८०
२०. व्यावहारिक जीवन में सजग रहें
(स्वामी सत्यरूपानन्द) १८२
२१. ईशावास्योपनिषद (१६)
(स्वामी आत्मानन्द) १८३
२२. आधुनिक मानव शान्ति की खोज
में (३२) (स्वामी निखिलेश्वरानन्द) १८५
२३. (प्रेरक लघुकथा) जो करूँ, सो प्रभु सेवा
(डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर) १८७
२४. स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१४)
(प्रव्राजिका व्रजप्राणा) १८८
२५. समाचार और सूचनाएँ १९०

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह मूर्ति मलेशिया स्थित रामकृष्ण मिशन की है । इस मूर्ति का अनावरण भारत के प्रधानमन्त्री माननीय श्रीनरेन्द्र मोदी जी द्वारा २२ नवम्बर, २०१५ को हुआ था ।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री धर्मवीर शर्मा, लालगढ़, बीकानेर (राज.)	११००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है । इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं । श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है ।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५६ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है । आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें । **– व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५४९.	श्री विनय कुमार मल्लिक, मुजफ्फरपुर (बिहार)	चित्रगुप्त सेवा संस्थान, सार्वजनिक चित्रांश पुस्तकालय, दरभंगा
५५०.	श्रीमती कृष्णा बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर (छ.ग.)	गवर्नमेंट कॉलेज, मु.पो./खाजूवाला, जिला - बीकानेर (राज.)
५५१.	श्री अनुराग, (स्मृति में श्री रामराज एवं श्रीमती उषाप्रसाद) दिल्ली	गवर्नमेंट पॉलीटेक्नीक कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला (पंजाब)
५५२.	,, ,,	गवर्नमेंट कॉलेज, मु./पो. बड़सर, जिला - हमीरपुर (हि.प्र.)
५५३.	,, ,,	राजकीय कन्या महाविद्यालय, गायत्री नगर, बूंदी (राजस्थान)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५७ अप्रैल २०१९ अंक ४

हनुमत् वन्दना

ध्यायेद् बालदिवाकरद्युतिनिभं देवादिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखैः प्रशंसियशसं देदीप्यमानं रुचा ।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालंकृतम् ।।

– हम पीतवस्त्र से सुसज्जित ऐसे पवनपुत्र का ध्यान करते हैं, जिनकी कान्ति बाल (सद्यः उदित) सूर्य के समान है, जो अरुण सदृश लाल नेत्रों वाले हैं, जो असुरों का दर्प-दलन करनेवाले हैं, जो सुग्रीव आदि वानरसमूह के साथ रहते हैं, जिनका तात्त्विक प्रेम सुव्यक्त है और देवराज इन्द्र आदि जिनके यश की प्रशंसा करते रहते हैं ।

यो वारां निधिमल्पपल्वलमिवोल्लङ्घ्य प्रतापान्वितो
वैदेहीघनशोकतापहरणो वैकुण्ठभक्तप्रियः ।
अक्षाद्यूर्जितराक्षसेश्वरमहादर्पापहारो रणे
सोऽयं वानरपुङ्गवोऽवतु सदा चास्मान् समीरात्मजः ।।

– जिस पराक्रमी ने समुद्र को क्षुद्र जलाशय (छोटे तालाब) के समान पार कर श्रीसीताजी के गहन शोक-सन्ताप को दूर किया, जिसने युद्ध में अक्ष आदि बलशाली राक्षसों का गर्व हरण किया और जिन्हें वैकुण्ठ और भक्त प्रिय लगते हैं, वही वानरश्रेष्ठ पवनपुत्र श्रीहनुमान हमेशा हम सबकी रक्षा करें ।

पुरखों की थाती

सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यत्र निर्वृतिः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ।।६३५।।

– पत्नी वह है, जो मधुर वाणी बोले; पुत्र वह है, जिससे सुख मिले; मित्र वह है, जिस पर पूरा विश्वास हो और देश वह है, जहाँ आजीविका प्राप्त हो। (महाभारत)

सौवर्णानि सरोजानि निर्मातुं सन्ति शिल्पिनः ।
तत्र सौरभनिर्माणे चतुरः चतुराननः ।।६३६।।

– शिल्पकार लोग भी सोने का कमल बना लेने में सक्षम हैं, परन्तु कमल में सुगन्ध उत्पन्न करना तो एकमात्र चतुरानन ब्रह्माजी के लिये ही सम्भव है।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वान् उदेश्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनिं गज उज्जहार ।।६३७।।

– (सूर्यास्त हो जाने पर कमल बन्द हो जाता है, उसी समय) एक कमल के अन्दर बन्द हुआ भ्रमर सोचता है – रात बीत जायेगी, सबेरा होगा, सूर्य का उदय होगा; तब यह कमल एक बार फिर खिल उठेगा (और तब मैं मुक्त हो जाऊँगा) – वह इस प्रकार सोच ही रहा था कि अहा, तभी एक हाथी ने उस कमल को उखाड़कर खा लिया।

युवा-शक्ति के दो महान आदर्श-पुरुष : श्रीहनुमानजी और स्वामी विवेकानन्द

किसी भी महान कार्य को सम्यक् सुसम्पन्न करने, किसी योजना को सटीक क्रियान्वयन करने का जब प्रसंग उठता है, तो उसमें सर्वप्रथम नाम युवकों का ही आता है। ऐसे कई बड़े-बड़े कार्य युवावस्था में ही सम्पन्न हुए, कई बड़े-बड़े कार्यों की योजनाएँ युवा-मन में ही उदित हुईं, पोषित हुईं और कालान्तर में क्रियान्वित हुईं। विशेषकर जब भारतीय युवा की बात आती है, तो वह और अधिक प्रासंगिक तथा महत्त्वपूर्ण बात हो जाती है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में, भारतीय साहित्य में युवाओं में निहित अन्त:शक्ति की वन्दना यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। भारतीय ऋषि युवा शक्ति की प्रशंसा और वन्दना करते हैं। साहित्यकार युवा शक्ति की श्लाघा करते क्लान्त नहीं होते। युगाचार्य युवकों का अभिनन्दन करते हैं। उनकी प्रशंसा करते हैं। युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव युवकों से सर्वाधिक स्नेह करते थे। वे कहते थे, ये बालक अभी निष्कलुष हैं, इनमें सांसारिकता प्रवेश नहीं की है, अभी ये ठीक-ठीक भाव को ग्रहण करने में समर्थ होंगे। तभी तो श्रीरामकृष्ण देव ने नरेन्द्र को स्वामी विवेकानन्द में रूपान्तरित कर दिया। राखाल ने अपने ब्रह्मानन्द स्वरूप की अभिव्यक्ति की। शरत् सारग्राही सारदानन्द बन गए। गाँव का लाटू अद्भुत सन्त अद्भुतानन्द बन गया आदि। श्रीमाँ सारदा, श्रीरामकृष्ण के युवा शिष्यों को देवदुर्लभ धन कहती थीं।

चाणक्य ने राज्य की बागडोर युवा चन्द्रगुप्त को सौंपी। चन्द्रशेखर आजाद, बिस्मिल, भगत सिंह आदि कई क्रान्तिकारी युवक ही थे। कितने राजनीतिज्ञ, कितने साहित्यकारों, नाटककारों ने युवावस्था में ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किया था। हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र महान साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युवा ही थे। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों – कला, विज्ञान, अन्तरिक्ष-गमन, पर्वतारोहण आदि में बहुत-से लोगों ने युवावस्था में ही सफलता प्राप्त की। कुछ वर्ष पहले विश्व की पहली विकलांग महिला अरुणिमा सिन्हा ने माउन्ट एवरेस्ट पर ध्वजारोहण कर विश्व कीर्तिमान स्थापित किया। ऐसे कई युवा आदर्श हैं। आज भारत विश्व में सर्वाधिक युवकों का देश है। इस देश और विश्व को एक सही नई दिशा, सार्वभौमिक, सार्वजनीन मार्ग, युवक ही दे सकते हैं। इसलिए सर्वप्रथम युवाशक्ति को अपने अन्त:स्थ अनन्त शक्ति और ऊर्जा का ज्ञान आवश्यक है। युवक अपने शक्ति स्रोत से अवगत हों और अपनी अन्त:स्थ शक्ति को प्रकट कर उसे राष्ट्र के नव-निर्माण और विश्वकल्याण हेतु उपयोग करें।

जब युवकों के समक्ष आदर्श प्रस्तुति का प्रसंग उपस्थित होता है, मेरे सम्मुख सर्वप्रथम दो व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होते हैं। वे हैं – श्रीराम के अनन्य भक्त श्रीहनुमानजी और श्रीरामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द। इन दोनों महान पुरुषों की अद्भुत जीवन-गाथा युवाओं के लिये प्रेरणा का स्रोत है। अत: मैं इस लघु निबन्ध में इनके जीवन की कुछ तुलनात्मक घटनाओं का उल्लेख करता हूँ, जिसे युवक सरलता से समझ सकें और इससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सार्थक कर सकें।

भगवान श्रीराम-अवतार में पवनपुत्र हनुमानजी ने श्रीराम के अवतार-प्रयोजन को सिद्ध करने में अपना जीवन समर्पित कर कृतार्थता का बोध किया। उसी प्रकार भगवान श्रीरामकृष्ण के अवतारोद्देश्य को सिद्ध करने में स्वामी विवेकानन्द जी अपना जीवन समर्पित कर धन्य हुए।

श्रीरामकृष्ण देव के अवतार प्रयोजन के भावी कार्य को उनके युवक शिष्यों ने ही आगे बढ़ाया और उसका सम्पूर्ण विश्व में प्रचार-प्रसार किया। लगभग १२० साल पहले स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन की विरासत युवाशक्ति के हाथों में सौंपा। वे कहते हैं – "तेजस्वी युवकों का एक दल गठित करो और उसे अपनी उत्साह की अग्नि से प्रज्वलित कर दो। (२/३५७) मेरा विश्वास युवा पीढ़ी – नई पीढ़ी में है। मेरे कार्यकर्ता उन्हीं में से आएँगे और वे सिंहों की भाँति सभी समस्याओं का हल निकालेंगे।" (४/२६१)

"हे युवको ! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के रूप में तुम्हें अर्पण करता हूँ।" (वि.सा. १/४०५)

श्रीहनुमानजी मानवता के आदर्श हैं। उनकी जिज्ञासा, उनका पुरुषार्थ, उनकी वीरता, उनकी आज्ञाकारिता, उनका विवेक, उनका समर्पण, उनकी अनन्य भक्ति अनुकरणीय है। उनका स्वर्ण-सुन्दरी, काम-कांचन, लोभ-मोहादि के प्रति प्रबल वैराग्य आचरणीय है। उनका सबके साथ मिलकर सभी विघ्न-बाधाओं में भी नायक बनकर कार्य करने और निरहंकारी बने रहने का आदर्श अनुसरणीय है। ऐसे आदर्श पुरुष से देश और विश्व का सच्चा कल्याण होता है। ये वास्तविक यथार्थ आदर्शपुरुष हैं।

जिज्ञासुवृत्ति – बचपन में हनुमानजी में ऐसी जिज्ञासा थी कि उदित सूर्य को देखकर उसे जानने की उत्कण्ठा ने उन्हें सूर्यमण्डल में पहुँचा दिया और उसे ग्रहण कर लिया – **बाल समय रवि भक्ष लियो।** वैसे ही स्वामी विवेकानन्द जी में भी बचपन में किसी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में जानने की प्रबल जिज्ञासा थी। वे अपनी माँ, अपने पिताजी और शिक्षकों से विभिन्न प्रकार की जिज्ञासाएँ करते और उसका उचित समाधान पाए बिना शान्त नहीं होते। ब्रह्मराक्षस और हनुमानजी के कदली वन में होनेवाली घटना से यह ज्ञात होता है। उनकी यही जिज्ञासा विस्तृत होकर ईश्वर-अन्वेषण का रूप लेती है और उन्हें श्रीरामकृष्ण देव के चरणों में उपस्थित कर देती है।

निरहंकारिता – हनुमानजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अतुल महाबलशाली होकर भी अत्यन्त विनम्र और स्वामी-भक्त हैं। महाबलवान हनुमानजी के बल के बारे में कौन नहीं जानता? उन्होंने बचपन में सूर्य का भक्षण किया। किष्किन्धा में श्रीराम-लक्ष्मणजी को कंधे पर लेकर सुग्रीवजी से मिलाया। लंकिनि को मारकर बेहोश कर दिया। सिन्धु में निशाचर वध किया। लंका के राक्षसों को मारा। लंका जलायी। सब करने के बाद भी तनिक अहंकार नहीं। जब लंका में सीताजी से मिलकर भगवान श्रीराम के पास सूचना देने पहुँचे, तब भगवान राम ने उनकी सारी विवेकपूर्ण वीरतापूर्वक घटनाएँ सुनकर कहा –

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी।।
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होई न सकत मन मोरा।।
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं।।

भगवान कहते हैं – हे हनुमान ! तेरे जैसा मेरा उपकारी देव, मनुज, मुनि कोई तनधारी नहीं है। हे पुत्र ! मैंने विचार कर देखा कि अब तुमसे मैं उऋण नहीं हो सकता। इतना गुणगान करने के बाद श्रीराम ने हनुमानजी से पूछा – ये सब कैसे किया? हनुमानजी ने सविनय कहा –

सो सब तव प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई।।

हे रघुनाथजी ! ये सब आपका ही प्रताप है। इसमें मेरी अपनी कोई प्रभुता, पुरुषार्थ नहीं है।

ठीक ऐसे ही हम स्वामी विवेकानन्द के जीवन में पाते हैं। परम मेधावी, सर्वशक्तिमान, तेजस्वी स्वामीजी ने अत्यन्त संघर्ष कर देश-विदेश में भारतीय सनातन धर्म और संस्कृति की गौरवमयी ध्वजा को लहराया। लेकिन वे अपने एक व्याख्यान में कहते हैं – ''यदि मैंने जीवन भर में एक भी सत्य वाक्य कहा है, तो वह उन्हीं (श्रीरामकृष्ण देव) का, केवल उन्हीं का वाक्य है। परन्तु यदि मैने ऐसे वाक्य कहे हों, जो असत्य, भ्रामक या मानव जाति के लिए हितकर न हों, तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं, उनका पूरा उत्तरदायी मैं ही हूँ।'' ऐसी निरहंकारिता थी स्वामी विवेकानन्द जी में।

स्वामी-भक्ति और सर्वस्व समर्पण – श्रीहनुमानजी स्वयं धन-मान-यश लोभ से असम्पृक्त ब्रह्मचारी हैं। किन्तु गुरुजी के आदेश पर धन-राज्य-आकांक्षी अपने गुरुपुत्र सुग्रीव की विषम परिस्थिति में पूर्ण समर्पण के साथ उनकी सेवा करते हैं। सदा उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। पुन: सुग्रीव के आदेश से भगवान श्रीरामकी सेवा में प्राणपण से तल्लीन हो जाते हैं। सीता की खोज से लेकर श्रीराम के राज्याभिषेक तक वे सभी कार्य सुसम्पन्न करते हैं। यहाँ तक कि जब उन्हें अयोध्या में रहकर भगवान श्रीराम की सेवा करने की इच्छा हुई, तो उन्होंने अपने स्वामी गुरुपुत्र श्रीसुग्रीवजी से आज्ञा ली और पुन: भगवान की सेवा में संलग्न हो गये। **(क्रमश:)**

जब-जब तुम्हें दुर्बलता का बोध हो, तब-तब यह समझो कि तुम न केवल स्वयं को, बल्कि अपने उद्देश्य को भी हानि पहुँचा रहे हो । अनन्त श्रद्धा और शक्ति ही सफलता का मूल है ।

– स्वामी विवेकानन्द

ऐसी बानी बोलिए

स्वामी ओजोमयानन्द
रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

किसी राज्य में एक मार्ग के मरम्मत का कार्य चल रहा था। उसी मार्ग के किनारे एक साधु आसन लगाकर बैठे हुए थे। मरम्मत करने वाले श्रमिकों में से एक श्रमिक ने साधु को धमकाते हुए कहा – ''देखते नहीं, यहाँ काम चल रहा है। उठो यहाँ से, नहीं तो उठाकर फेंक देंगे।'' साधु ने नेत्र खोलकर कहा – ''इसलिए तुम ऐसे हो।'' साधु के नेत्र और उनकी ओजस्वी वाणी से भयभीत होकर श्रमिक भाग गया। यह सब सुनकर ठेकेदार आया। उसने साधु से ऊँचे स्वर में कहा – ''उठो यहाँ से, हमें यहाँ कार्य करने का अधिकार दिया गया है।'' तब साधु ने कहा – ''इसलिये तुम ऐसे हो।'' साधु की वाणी-शक्ति को भाँपकर ठेकेदार भयभीत होकर चला गया। समाचार सुनकर मंत्री ने आकर कहा – ''यहाँ से उठ जाइए, यहाँ बैठना नियम विरुद्ध है। यहाँ बैठे रहने से राजदंड हो सकता है।'' साधु ने पूर्व की भाँति ही कहा – ''इसलिये तुम ऐसे हो।'' अन्त में राजा को यह सूचना दी गई। तब उन्होंने स्वयं आकर विनम्रतापूर्वक साधु से कहा – ''महात्माजी ! आपका स्थान यहाँ नहीं है। आप हमारी अतिथिशाला में आगमन करें।'' साधु ने तब भी वही वचन कहा – ''इसलिए तुम ऐसे हो।'' वस्तुतः वाणी ही हमारा परिचय देती है कि हम कैसे हैं।

वाणी हमारे ज्ञान का वाचक होती है। वाणी हमारे शिष्टाचार का परिचायक होती है। वाणी हमारे सामान्य बोध का परिचय देती है। कहते हैं, 'बातन हाथी पाइये, बातन हाथी पाँव' अर्थात् हमारे बातचीत से हम उपहारस्वरूप हाथी पा सकते हैं और हमारी बात सुनकर हमें दंडस्वरूप हाथी के पाँव तले कुचला जा सकता है। कुछ लोगों की वाणी ऐसी होती है, जैसे उनमें कोई सम्मोहन शक्ति छुपी हो। अमेरिका की विश्वधर्म महासभा में जब कोलाहल के कारण व्यवस्थापक के लिये सम्भालना कठिन हो जाता था, तब वे यह घोषणा करते थे कि आप सब शान्ति बनाये रखें, इसके पश्चात् स्वामी विवेकानन्द संबोधित करेंगे और तब सभी लोग शान्त हो जाते थे। इसी प्रकार कुछ लोगों की वाणी इतनी कर्कश होती है कि लोग उनसे दूर भागते हैं। अर्थात् वाणी व्यक्ति की वह प्रतिभा होती है, जिसमें लोग आपके सान्निध्य पाने का प्रयास करते हैं। पर इसके विपरीत होने पर दूरी भी बना लेते हैं।

स्पष्टवादिता – यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि, क्या चापलूसी करना मधुर वाणी का प्रतीक है? नहीं, कदापि नहीं। चापलूसी के पीछे स्वार्थ छिपा होता है। यह मात्र सामने वाले व्यक्ति को प्रभावित करने के लिए किया जाता है, पर यह चापलूसी कपटता का मार्ग है। इस पर चलकर कभी महानता की सीढ़ी नहीं चढ़ी जा सकती, व्यक्तित्व का निर्माण नहीं हो सकता। एक बार मैसूर के राजा ने स्वामी विवेकानन्द जी से अपने सभासदों के सम्बन्ध में राय माँगी। स्वामीजी ने स्पष्ट कह दिया कि सभासद प्रायः सर्वत्र ही चापलूस हुआ करते हैं। तब महाराज ने इसका विरोध करते हुए कहा कि कम-से-कम मेरा दीवान तो ऐसा नहीं है, वह विश्वस्त है। तब स्वामीजी ने उत्तर दिया – ''परन्तु दीवान का यही तो काम है कि राजा का धन लूटकर अंग्रेज सरकार के प्रतिनिधि को देना।'' तब राजा ने विषय बदल दिया तथा कुछ देर बाद स्वामीजी को अपने गोपनीय कमरे में बुलाकर कहा – ''देखिए स्वामीजी ! अत्यधिक स्पष्टवादिता सदैव निरापद नहीं होती। मुझे भय है कि कोई कभी आपको जहर न दे बैठे।'' इस पर स्वामीजी तुरन्त बोल उठे – ''आप कहते क्या हैं! क्या आप सोचते हैं कि एक सच्चा संन्यासी केवल प्राणों के भय से सत्य बोलने में हिचकेगा?'' स्वामीजी का स्वभाव ही ऐसा था कि किसी का दोष देखने पर उसके सामने ही उसकी भर्त्सना किया करते थे, किन्तु उस के पीठ पीछे उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करते थे। उसके दोष की बात उस समय उनके मन में आती ही नहीं थी।''[१] वाणी की स्पष्टवादिता हमारे स्वच्छ चरित्र का भी सूचक होती है कि हम चालाक या कपटी नहीं है। हम किसी से कुछ कहें, तो कुछ तथ्य छिपाकर या उसे मरोड़कर नहीं कहना चाहिए अन्यथा हमारी विश्वसनीयता समाप्त हो जाएगी।

वाणी की मिठास – अब यहाँ यह भी प्रश्न उठ सकता है कि क्या हमें कड़वा सत्य कहना चाहिए? श्रीमाँ सारदा देवी इसका उत्तम निराकरण करते हुए कहती हैं – ''यह क्या जी, मनुष्य के मन को चोट पहुँचाकर क्या बात करनी

चाहिए? बात सच होने पर भी उसे अप्रिय ढंग से नहीं बोलनी चाहिए। नहीं तो, स्वभाव बाद में वैसा ही हो जाता है। मनुष्य का यदि आँखों का संकोच चला जाय, तो मुँह में कोई बात रुकती नहीं। ठाकुर कहते थे, 'यदि किसी लँगड़े से पूछना हो कि तुम लँगड़े कैसे हुए, तो उससे कहना चाहिए कि तुम्हारे पैर ऐसे मुड़ कैसे गए?'[२] अत: कभी किसी को ऐसा वचन नहीं कहना चाहिए, जिससे उसे दुख हो। यदि हम इतिहास के पन्नों को पलटकर देखें, तो हम पायेंगे कि कुछ टिप्पणियों ने क्रोधाग्नि को जलाने का कार्य किया था। द्रौपदी ने दुर्योधन को 'अन्धे का पुत्र अन्धा' कहा था और प्रतिशोध में दुर्योधन ने भरी सभा में उसके चीर हरण का प्रयास किया था। वाणी से लगने वाले आघात के सम्बन्ध में शिवजी देवी सती से कहते हैं –

तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः
शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता।
स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभि-
र्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः।।[३]

अर्थात हे देवि ! शत्रुओं के बाण से बींध जाने पर भी ऐसी व्यथा नहीं होती, जैसे कुटिल बुद्धि स्वजनों के कुटिल वचनों से होती है, क्योंकि बाणों से शरीर छिन्न-भिन्न हो जाने पर तो जैसे-तैसे निद्रा आ जाती है, पर कुवाक्यों से मर्मस्थान विद्ध होने पर मनुष्य पीड़ा से दिन-रात बेचैन रहता है।

वाणी की मिठास का अर्थ झूठ बोलना भी नहीं है। अधिकांशत: लोग अपना काम साधने के लिये ही मीठा झूठ बोलते हैं और एक झूठ छिपाने के लिए हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। इस प्रकार वे अपराध का ही संचय करते हैं तथा अपने संस्कार में झूठ बोलने की छाप छोड़ते जाते हैं। अन्ततोगत्वा इससे उनकी ही हानि होती है।

वाणी की कुशलता – एक व्यक्ति जिसे हम न पहचानते हों, पर हमें उसके साथ व्यापार करना हो, एक अनजान व्यक्ति जिसे हम नौकरी पर रखना चाहते हों, ऐसी विभिन्न परिस्थितियों में हमें उस व्यक्ति की वाणी के माध्यम से ही निर्णय करना पड़ता है। अत: वाणी की कुशलता अत्यन्त आवश्यक है। एक नायक की वाणी पर उसका पूरा नेतृत्व निर्भर करता है। अलेक्जेंडर के सैनिक आधी यात्रा के पश्चात् ही वापस जाना चाहते थे, तब अलेक्जेंडर ने सैन्यदल को संबोधित किया कि वह स्वयं वापस नहीं जायेगा। उसके ऐसा करने पर पूरा सैन्यदल पुन: आगे जाने को प्रस्तुत हो गया। वाणी की कुशलता न हो, तो नायक एक ऐसा नायक होगा, जिसके कोई अनुयायी ही नहीं होंगे। वाणी की कुशलता होने पर उसके अनुचर अपने प्राण देने को भी तत्पर हो जाते हैं। कबीरदास जी कहते हैं –

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय।।

अर्थात् हमें इस प्रकार के वचन कहने चाहिए कि मन मंत्र-मुग्ध हो जाए, जो दूसरों को शान्ति प्रदान करे और स्वयं को भी शान्ति मिले।

उचित वचन – एक व्यक्ति विद्वान हो, पर यदि उसे व्यक्त करने की क्षमता उसमें न हो, तो उसकी विद्वत्ता निरर्थक हो जाती है । किसी साक्षात्कार में सब कुछ जानते हुए भी यदि कोई कुछ न कह सके, तो इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी? इसीलिये वर्तमान समय में विद्यार्थी साक्षात्कार हेतु विशेष सचेत हो रहे हैं। कुछ लोग आवश्यकता से भी कम बोलते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों के वक्तव्य को समझने में भूल होने की अत्यधिक सम्भावना होती है। कभी किसी पर अत्याचार हो रहा हो और कोई देखते हुए भी चुप बैठा रहे, तो उसे भी अत्याचार को मौन समर्थन देना ही माना जाता है। जैसेकि महाभारत में द्रोपदी के चीरहरण के समय राजा धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण आदि के मौन रहने से इतिहास के पन्नों पर यह कलंक सदैव के लिए रह गया। अत: आवश्यकतानुसार उचित वचन बोलना वाणी की एक कला है।

वाचाल – कुछ लोग आवश्यकता से अधिक बोलने के अभ्यस्त होते हैं। ऐसे व्यक्तियों से लोग दूर भागते हैं। अधिक बोलने के कारण उनकी वाणी में सारगर्भिता का अभाव तो होता ही है। इसके साथ-ही-साथ वे कभी-कभी अनर्गल प्रलाप भी कर बैठते हैं। ऐसे में बड़ों और छोटों के बीच कैसी बातें करनी चाहिए, इसका भान नहीं रहता। परन्तु वाणी हमारे चरित्र का महत्वपूर्ण गुण होती है, जहाँ हमें सदैव यह याद रखना चाहिए कि किनसे वार्तालाप करते हुए हमें कहाँ पूर्ण विराम देना है।

निंदा – निंदा करना अपनी वाणी को दूषित करना है। निंदा करने से मन की अधोगति होती है तथा मन में नकारात्मक भाव बढ़ते हैं। इससे भूल करनेवाला तो भूल करता ही है, पर जो भूल खोजता है, वह उस भूल के चिंतन के द्वारा उस भूल से भी बड़ी भूल अपने मन में पैदा

कर लेता है। श्रीरामकृष्ण देव इस समस्या का समाधान आध्यात्मिक दृष्टि से करते हैं – "... किसी की भी निंदा मत करो। नारायण ही यह सब रूप धारण किए हुए हैं।"[४] अत: ऐसी उच्च दृष्टि रखकर हम निंदा करने से बच सकते हैं।

परन्तु यदि कोई हमारी निंदा करे, तो उस निंदा को सुनकर हमें आग-बबूला भी नहीं हो जाना चाहिए, वरन् उसे सकारात्मक दृष्टि से लेते हुए अपनी भूल सुधारने का प्रयास करना चाहिए। कबीरदासजी कहते हैं –

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

अर्थात् जो हमारी निंदा करता हो, उसे अपने निकट कुटिया बनाकर रखना चाहिए। क्योंकि वह तो बिना साबुन और पानी के ही हमारी निंदा कर अर्थात् हमारी त्रुटियों को बताकर हमारे स्वभाव को निर्मल करता है।

वाक् कला – १. जिस प्रकार तरकस से निकले हुए तीर वापस नहीं आते, उसी प्रकार हमारे कहे गये वचन पुन: वापस नहीं आते। अत: हमें अपनी वाणी का सोच-समझकर प्रयोग करना चाहिए। हमारे शब्द कहीं अर्थ से अनर्थ न बन जायें, इसके लिये हमें सजग होना चाहिए।

२. स्वयं अशान्त रहनेवाला व्यक्ति कभी किसी को शान्ति नहीं दे पाता। अत: स्वयं शान्त रहने का प्रयास करें, तब शान्ति स्वयं बिखरेगी।

३. बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने पर भी यदि किसी में वाक्-संयम न हो, तो वह लोकप्रिय नहीं होता। अत: अन्य प्रतिभाओं के होने पर उसका अहंकार न करते हुए हमें विनम्र होना चाहिए।

४. छोटे हों या बड़े, हमें उन्हें यथायोग्य सम्मान देना चाहिए।

५. किसी के दुख को सुनकर हमें कभी यह नहीं कहना चाहिए कि तुम अपने कर्मों का फल पा रहे हो। वरन् उसकी पूरी बात सुनकर उसे ढाड़स बँधाते हुए उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

६. हमारी वाणी में जटिलता नहीं होनी चाहिए। जटिल व्यक्ति पसन्द नहीं किये जाते। अत: हमारे वाक्य स्पष्ट होने चाहिए।

७. सत्य वचन हमारी विश्वसनीयता को बढ़ाते हैं, इसलिए हमें इसमें अटल रहना चाहिए।

८. हमें सदैव अपनी ही बात कहने में व्यस्त नहीं होना चाहिए, दूसरों को भी बोलने का अवसर देना चाहिए ।

९. जिनके साथ भी हम कार्य करते हों, वे छोटे हों या बड़े, उनका अभिमत अवश्य लेना चाहिए।

१०. नकारात्मक और निंदात्मक विचारों के विचार-विमर्श से यथासम्भव दूर रहना चाहिए।

११. बोलने से पहले सोच लें, क्योंकि बोलने के बाद पछताने से कोई लाभ नहीं मिलता।

१२. क्रोध आने पर वाणी को संयत करने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि ऐसे समय में बहुधा हम अनुचित ही कह जाते हैं।

१३. समय आने पर तर्क करना भी उचित होता है, पर कुतर्क करना उचित नहीं।

१४. अपनी ही बातों को सिद्ध करने का प्रयास हमें मित्रविहीन कर सकता है। अत: दूसरों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को हमें नहीं छीनना चाहिए।

१५. हमें सहज भाषा का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि भाषा की जटिलता भले ही हमारी विद्वत्ता को सिद्ध कर दे, परन्तु भाव का अभाव हो जाता है।

१६. हमें वाक्यों को स्पष्ट कहना चाहिए, क्योंकि हमारे बोलने का तात्पर्य भिन्न होने पर भी कभी-कभी अर्थ भिन्न हो जाता है।

१७. हमें कभी भी किसी के प्रति द्वेष-भावना से कुछ नहीं कहना चहिए, क्योंकि यह असहनीय पीड़ा का कारण हो जाता है।

१८. श्रीभगवान गीता में कहते हैं –

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

अर्थात् जो उद्वेग न करने वाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो शास्त्रों के पठन एवं जप का अभ्यास है, वही वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।[५]

उपसंहार – स्वामी विवेकानन्द जी वाणी की शब्द-शक्ति के सम्बन्ध में कहते हैं – "एक मनुष्य दूसरे को बेवकूफ कह देता है और बस, इतने से ही वह दूसरा मनुष्य उठ खड़ा होता है और अपनी मुट्ठी बाँधकर उसकी नाक पर एक घूँसा जमा देता है। देखो तो, शब्द में कितनी शक्ति है ! एक स्त्री बिलखकर रो रही है, इतने में एक दूसरी स्त्री

शेष भाग १८४ पृष्ठ पर

साधुओं के पावन प्रसंग (४)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

स्वामी माधवानन्द (१८८८-१९६५)

स्वयं को लोकदृष्टि से दूर रखना ही जिनका स्वभाव था, ऐसे एक व्यक्ति के सम्बन्ध में लिखना सरल नहीं होता। योगी-महात्माओं का यह विशिष्ट लक्षण ही होता है । सतर्क साधक जगत में अज्ञात रहना ही पसन्द करते हैं, जिससे उनके ईश्वर-सान्निध्य में कोई विघ्न न हो। तो भी धर्म, दर्शन एवं शास्त्र विषयक समस्त ग्रन्थालय की अपेक्षा उनका जीवन ही ईश्वर के प्रति हमें अधिक जागरुक करता है। वे धार्मिक विषयों के आलोचक नहीं होते, उनके उपदेश उनकी कुछ सामान्य बातों में भी हो सकते हैं अथवा मौन के द्वारा भी हो सकते हैं। तो भी देखा जाता है कि किसी महान पुरुष के द्वारा उच्चारित कुछ बातें मात्र ही किसी के जीवन की गति को परिवर्तित कर देती हैं।

रामकृष्ण संघ से मेरा प्रथम सम्पर्क १९५० में हुआ। तभी से मैं नियमित रूप से बेलूड़ मठ, दक्षिणेश्वर एवं मायेर बाड़ी (उद्बोधन) में आना-जाना करता था। १९५८ के दिसम्बर माह में मैं अद्वैत आश्रम, कोलकाता में (साधु बनने के लिए) सम्मिलित हुआ। तभी से स्वामी माधवानन्दजी महाराज के दर्शन एवं उनसे वार्तालाप करने के बहुत अवसर प्राप्त हुए। महाराज तब रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव थे। उनके साथ हुए वार्तालापों में कुछ तो अत्यन्त व्यक्तिगत हैं और प्रकाशित करने योग्य नहीं हैं। तो भी महाराज की महानता की परिचायक कुछ छोटी घटनाएँ मेरी स्मृति और डायरी से संग्रह कर आपके साथ मनन करने की इच्छा है।

स्वामी माधवानन्द

१९५९ में अद्वैत आश्रम कोलकाता स्थित ४ वेलिंग्टन लेन पर था। एक दिन स्वामी माधवानन्द जी नेत्र-परीक्षण के लिए डॉ. नीहार मुंशी के पास गए। एक अन्य वयस्क साधु भी उनके साथ थे। बेलूड़ मठ वापस जाते समय वे अद्वैत आश्रम आए। गर्मी का मौसम था। हम शीघ्रतापूर्वक उनके जलपान के लिए दो नारियल-पानी और कुछ मिठाई लेकर आए। दुर्भाग्यवश नारियल का गूदा मोटा था और उसका पानी बिल्कुल स्वादहीन था। स्वामी माधवानन्द जी ने किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त न करते हुए उसे पी लिया। किन्तु दूसरे महाराज ने उसी समय उसे लौटा दिया। हम लोग लज्जित होकर उसी समय उनके लिए अच्छा नारियल लाने जा रहे थे। किन्तु स्वामी माधवानन्द जी महाराज ने यह कहकर रोका कि, ''दुस्तोषणीय स्वभाव साधु जीवन के लिए अच्छा नहीं है।'' गीता के उपदेश – बिना इच्छा के जो तुम्हारे पास आए, उसी में सन्तुष्ट रहो का उन्होंने अपने जीवन में पालन किया था ।

स्वामी माधवानन्दजी १९६१ में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव के पदभार का त्याग करने के पूर्व छुट्टी बिताने के लिए कालिम्पोंग गए थे। बेलूड़ मठ से उनके व्यक्तिगत सचिव ने दवाई के कुछ कैप्स्यूल साधारण डाक से महाराज को कालिम्पोंग भेजने के लिए कहा था। महाराज अत्यन्त मितव्ययी थे और वे नहीं चाहते थे कि उनके व्यक्तिगत प्रयोजन के लिए अतिरिक्त खर्चा हो। किसी प्रकार के विशेष भोजन और व्यवस्था के भी वे अनिच्छुक थे। इसलिए, मैंने लिफाफे के ऊपर सर्वप्रथम पता लिखा, फिर कैप्स्यूल को पतली प्लास्टिक में डालकर इस प्रकार लिफाफे के भीतर रखा कि वह पैकेट इधर-उधर हिल न सके तथा डाक-विभाग के द्वारा टिकट पर मुहर लगाते समय भी उस पर कोई दबाव न आए। इसके साथ मैंने एक चिट्ठी लिखकर उसे दवाई के साथ डाल दी। महाराज के छुट्टी से वापस आने के बाद उनसे बेलूड़ मठ मिलने गया। उन्होंने बोला, ''तुम बहुत बुद्धिमान हो। मैंने तुम्हारा लिफाफा खोला और उसमें से पत्र निकाल कर लिफाफे को रद्दी कागजों की टोकरी में फेंक दिया। तुम्हारा पत्र पढ़कर समझ में आया कि लिफाफे के अन्दर मेरी दवाई है। लिफाफे को पुन: ठीक कर देखा कि कैप्स्यूल ठीकठाक ही हैं। बहुत कम खर्चे में

दवाई भेजने के लिए तुम्हें धन्यवाद।''

जब मैं अद्वैत आश्रम में सम्मिलित हुआ, तब स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज आश्रम के अध्यक्ष थे। हमारा प्रकाशन विभाग रविवार को बन्द रहता था। इसलिए तब हमलोग प्राय: बेलूड़ मठ जाते और वहीं पूरा दिन बिताते। स्वामी माधवानन्द जी बीच-बीच में उनके व्यक्तिगत अथवा कार्यालय सम्बन्धी कुछ पत्रादि हमारे द्वारा स्वामी गम्भीरानन्द जी को भेजते। वे अपना पत्र किसी पुराने व्यवहृत लिफाफे में भरकर उसका मुँह बन्द करते और हमें स्वामी गम्भीरानन्द जी को उसे देने के लिए कहते। वे मानते थे कि रामकृष्ण संघ का एक-एक पैसा स्वामी विवेकानन्द का रक्त अर्थात् कठिन परिश्रम द्वारा अर्जित है। वे स्वयं भी एक कृच्छसाधक थे और साधुओं द्वारा अपव्यय के घोर विरोधी थे।

१९६१ में मस्तिष्क के शल्योपचार के लिए अमेरिका जाने के पूर्व महाराज कलकता आए थे और उन्होंने ५ डिही एन्टाली रोड स्थित अद्वैत आश्रम के नवनिर्मित भवन का उद्घाटन किया। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि प्रवेशपथ पर फीता काटने के बाद उन्होंने श्रीरामकृष्ण को उद्देश्य कर हाथ जोड़कर प्रणाम किया था। बाद में नाश्ते की टेबल पर एक साधु ने कौतुक करते हुए उन्हें याद दिलाया, ''महाराज, आपने अद्वैत आश्रम का नियम भंग किया है। यहाँ स्वामीजी के निर्देशानुसार कोई भी धार्मिक अनुष्ठान अथवा किसी विशेष देवता का प्रणाम इत्यादि नहीं होता।'' स्वामी माधवानन्द जी ने तत्क्षण उत्तर दिया, ''यह अभ्यास का प्रभाव है, मैं क्या कर सकता हूँ?'' उनके जीवन में ज्ञान और भक्ति का पूर्ण समन्वय था। उनका बाह्य व्यवहार भले ही पूर्णत: तर्कपूर्ण और कठोर था, किन्तु हमने देखा है कि उनका अन्तर प्रेम और भक्ति से सराबोर था।

अद्वैत आश्रम के उपरोक्त कार्यक्रम में लगभग दो सौ साधु आए थे। उनके जलपान की व्यवस्था की जबाबदारी हमने एक खाद्य-प्रबंधक को सौंपी थी। मुझे स्वामी माधवानन्द जी एवं अन्य वरिष्ठ साधुओं को जलपान कराने का कार्य दिया गया था। बेलूड़ मठ में महाराज के सेवक को मैंने पहले ही फोन किया था और उन्होंने मुझे महाराज के नाश्ते की दैनिक सूची बता दी थी। उसी के अनुरूप हमने ब्रिटेनिया क्रीमक्रैकर बिस्कुट, सन्देश मिठाई एवं अन्यान्य वस्तुएँ खरीदी थीं। जब स्वामी माधवानन्द जी को नाश्ता दिया गया, तब उन्होंने कहा, ''हे भगवान! मैं जहाँ भी जाता हूँ, मुझे एक ही प्रकार की वस्तुएँ खानी होती हैं। क्या बात है? ये सब लड़के मुझे थोड़ा-सा भी स्वाद बदलने नहीं देंगे।'' जीवन्मुक्त पुरुष के लिए नियम के घेरे में आबद्ध होना कष्टकर होता है, किन्तु हमने उनके स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर ही वैसा किया था। जो भी हो, हमने उन्हें अन्य खाद्य-पदार्थ भी दिए और उन्होंने आनन्दपूर्वक खाए।

अद्वैत आश्रम में मैं जब प्रथम सम्मिलित हुआ, तब प्रूफ संशोधन का कार्य करता था। जब भी मुझे कुछ प्रश्न होता, तो मैं स्वामी गम्भीरानन्द जी से पूछता। एक दिन उन्होंने मुझे कहा, ''मैं मायावती जा रहा हूँ। स्वामीजी के 'कम्प्लीट वर्क्स' के सम्बन्ध में युदि तुम्हें कुछ शंका या प्रश्न हो, तो तुम स्वामी माधवानन्द जी महाराज से पूछना।'' स्वामी माधवानन्द जी रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य में निष्णात थे। स्वामीजी की जन्मशती के समय हमें स्वामीजी का एक अप्रकाशित पत्र प्राप्त हुआ था । स्वामीजी ने वह पत्र मन्मथनाथ भट्टाचार्य को बंगाली में लिखा था। स्वामीजी के 'कम्प्लीट वर्क्स' में उस पत्र को प्रकाशित करने हेतु स्वामी गम्भीरानन्द जी ने उसका अनुवाद किया और स्वामी माधवानन्द जी के अनुमोदन हेतु उनके पास भेजा। स्वामी माधवानन्द जी ने अनुवाद को अच्छी तरह देखा और उसे प्रकाशन हेतु अद्वैत आश्रम वापस भेज दिया। कितने लोग समझ ही नहीं पाएँगे कि रामकृष्ण संघ के ये विशिष्ट संन्यासी किस प्रकार एकान्त में, लोकदृष्टि से दूर रहकर स्वामीजी का कार्य कर गए हैं।

१९६३ में मेरी (दो वर्ष के लिए) ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में जाने की बात थी। किन्तु स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने मुझसे कहा कि स्वामीजी की शतवार्षिकी जयन्ती के कारण इस बार मेरा जाना सम्भव नहीं होगा। स्वामीजी के 'कम्पलीट वर्क्स' के शतवार्षिकी संस्करण के प्रकाशन की तैयारी, स्वामीजी के १५ चित्रों का मुद्रण कार्य एवं पार्क-सर्कस में एक पुस्तक-मेले के आयोजन इत्यादि में हम अत्यन्त व्यस्त थे। जो भी हो, मैंने बेलूड़ मठ जाकर स्वामी माधवानन्द जी से कहा, ''पूजनीय स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने मुझसे इस वर्ष (ब्रह्मचारी) प्रशिक्षण केन्द्र में जाना स्थगित कर स्वामीजी का कार्य करने के लिए कहा है।'' स्वामी माधवानन्द जी ने तत्क्षण कहा, ''गम्भीरानन्द ने ठीक ही कहा है। स्वामीजी का कार्य करो। यदि तुम्हारी एक वर्ष देरी से ब्रह्मचर्य दीक्षा होती है, तो यह मत सोचो कि तुम एक जूनियर साधु हो जाओगे। संन्यास एवं ब्रह्मचर्य

शेष भाग पृष्ठ १७० पर

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२८)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

भक्तगण उसी कमरे में श्रीरामकृष्ण के भोजन आदि की तैयारी कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को जरा गाने के लिए कह रहे हैं। नरेन्द्र गा रहे हैं –

(भावार्थ) – ''माँ, घने अन्धकार में तेरा रूप चमकता है। इसीलिए योगी पहाड़ की गुफा में निवास करता हुआ ध्यान लगाता है। अनन्त अन्धकार की गोदी में, महानिर्वाण के हिल्लोल में चिर शान्ति का परिमल लगातार बहता जा रहा है। महाकाल का रूप धारण कर, अन्धकार का वस्त्र पहन, माँ, समाधि मन्दिर में अकेली बैठी हुई तुम कौन हो? तुम्हारे अभय चरणकमलों में प्रेम की बिजली चमकती है, तुम्हारे चिन्मय मुखमण्डल पर हास्य शोभायमान है।''

नरेन्द्र ने ज्योंही गाया, 'माँ, समाधि-मन्दिर में अकेली बैठी हुई तुम कौन हो?'– उसी समय श्रीरामकृष्ण बाह्यज्ञान-शून्य होकर समाधिमग्न हो गये। ... ...

नरेन्द्र हाजरा महाशय से बरामदे में बहुत देर तक बातचीत कर रहे थे। नरेन्द्र के पिता के देहान्त के बाद घर में बड़ा ही कष्ट हो रहा है। अब नरेन्द्र कमरे के भीतर आकर बैठे। श्रीरामकृष्ण – तू क्या हाजरा के पास बैठा था? तू विदेशी है, और वह विरही! हाजरा को भी डेढ़ हजार रुपयों की आवश्यकता है। ... ...

श्रीरामकृष्ण (गिरीश के प्रति) – मैं नरेन्द्र को आत्मा का स्वरूप मानता हूँ। और मैं उसका अनुगत हूँ। ... (हँसकर) – उसका है मर्द का भाव (पुरुषभाव) और मेरा औरत-भाव (प्रकृतिभाव)। नरेन्द्र का ऊँचा घर, अखण्ड का घर है। ... (नरेन्द्र आदि के प्रति) – सच कहता हूँ, मुझे इस बात का जरा भी दुख नहीं होता कि मैंने वेदान्त आदि शास्त्र नहीं पढ़े। मैं जानता हूँ, वेदान्त का सार है – 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है'। फिर गीता का सार क्या है? गीता का दस बार उच्चारण करने पर जो होता है, अर्थात् त्यागी, त्यागी! ... ...

श्रीरामकृष्ण (गिरीश के प्रति) – हाँ जी, मेरी बात के बारे में तुम लोग सब क्या कह रहे थे? मैं खाता-पीता और मजे में रहता हूँ।

गिरीश – आपकी बात और क्या कहूँगा? आप क्या साधु हैं?

श्रीरामकृष्ण – साधु-वाधु नहीं। सच ही तो मुझ में साधु-बोध नहीं है।

गिरीश – मजाक में भी आप से हार गया।

श्रीरामकृष्ण – मैं लाल किनारी की धोती पहनकर जयगोपाल सेन के बगीचे में गया था। केशव सेन वहाँ पर था। केशव ने लाल किनारी की धोती देखकर कहा, 'आज तो खूब रंग दीख रहा है! लाल किनारी की बड़ी बहार है!' मैंने कहा, 'केशव का मन बहलाना होगा, इसीलिए बहार लेकर आया हूँ।'

अब फिर नरेन्द्र का गाना होगा। श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से तानपूरा उतार देने के लिए कहा। नरेन्द्र बहुत देर से तानपूरे को बाँध रहे हैं। श्रीरामकृष्ण तथा सभी लोग अधीर हो गये हैं।

विनोद कह रहे हैं, ''आज बाँधना होगा, गाना किसी दूसरे दिन होगा!'' श्रीरामकृष्ण हँस रहे हैं और कह रहे हैं, ''ऐसी इच्छा हो रही है कि तानपूरे को तोड़ डालूँ। क्या 'टंग टंग' – फिर 'ताना नाना तेरे नुम्' होगा।''

भवनाथ – संगीत के प्रारम्भ में ऐसी ही चीढ़ लगती है।

नरेन्द्र (बाँधते बाँधते) – न समझने से ही ऐसा होता है।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए) – देखो, हम सभी को उड़ा दिया!

नरेन्द्र गाना गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण छोटे तखत पर बैठे सुन रहे हैं। नित्यगोपाल आदि भक्तगण फर्श पर बैठे सुन रहे हैं।

(भावार्थ) – (१) ''ओ माँ, अन्तर्यामिनी, तुम मेरे हृदय में जाग रही हो,

रात-दिन मुझे गोदी में लिये बैठी हो।''

(२) ''गाओ रे आनन्दमयी का नाम,

ओ मेरे प्राणों को आराम देनेवाली एकतन्त्री।''

(३) ''माँ, घने अन्धकार में तेरा रूप चमकता है।
इसीलिए योगी पहाड़ की गुफा में
रहकर ध्यान करता रहता है।''

श्रीरामकृष्ण भावविभोर होकर नीचे उतर आये हैं और नरेन्द्र के पास बैठे हैं। भावविभोर होकर बातचीत कर रहे हैं। – ''गाना गाऊँ? नहीं, नहीं। ... उद्दीपन के लिए सुनना चाहिए। उसके बाद क्या आया और क्या गया! उसने आग लगा दी, सो तो अच्छा है। उसके बाद चुप। अच्छा, मैं भी तो चुप हूँ, तू भी चुप रह। आनन्द-रस में मग्न होने से मतलब है! गाना गाऊँ? अच्छा, गाया भी जा सकता है। जल स्थिर रहने से भी जल है और हिलने-डुलने पर भी जल है।''

नरेन्द्र पास बैठे हैं। उनके घर में कष्ट है, इसीलिए वे सदा ही चिन्तित रहते हैं। वे साधारण ब्राह्मसमाज में आते-जाते रहते हैं। अभी भी सदा ज्ञान-विचार करते हैं, वेदान्त आदि ग्रन्थ पढ़ने की बहुत ही इच्छा है। इस समय उनकी आयु तेईस वर्ष की होगी। श्रीरामकृष्ण एकदृष्टि से नरेन्द्र को देख रहे हैं। (हँसकर नरेन्द्र के प्रति) – तू तो 'ख' (आकाश की तरह) है, परन्तु यदि टैक्स नहीं रहता! कृष्णकिशोर कहा करता था, मैं 'ख' हूँ। एक दिन उसके घर जाकर देखता हूँ तो वह चिन्तित होकर बैठा है, अधिक बात नहीं कर रहा है। मैंने पूछा, 'क्या हुआ जी, इस तरह क्यों बैठे हो?' उसने कहा, 'टैक्सवाला आया था, कह गया, यदि रुपये न दोगे, तो घर का सब सामान नीलाम कर लेंगे। इसीलिए मुझे चिन्ता हुई है।' मैंने हँसते-हँसते कहा, 'यह कैसी बात है जी, तुम तो 'ख' (आकाश) की तरह हो। जाने दो, सालों को सब सामान ले जाने दो, तुम्हारा क्या?'

''इसीलिए तेरे से कहता हूँ, तू तो 'ख' है – इतनी चिन्ता क्यों कर रहा है? जानता है, श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था, 'अष्टसिद्धि में से एक सिद्धि के रहते कुछ शक्ति हो सकती है, परन्तु मुझे न पाओगे।' सिद्धि द्वारा अच्छी शक्ति, बल, धन ये सब प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती।

''एक और बात। ज्ञान-अज्ञान से परे रहो। कई लोग कहते हैं, अमुक बड़े ज्ञानी हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। वशिष्ठ इतने बड़े ज्ञानी थे परन्तु पुत्रशोक से बेचैन हुए थे। तब लक्ष्मण ने कहा, 'राम, यह क्या आश्चर्य है! ये भी इतने शोकार्त हैं!' राम बोले, 'भाई, जिसका ज्ञान है, उसका अज्ञान भी है; जिसको आलोक का बोध है, उसे अन्धकार का भी है; जिसे सुख का बोध है, उसे दु:ख का भी है; जिसे भले का बोध है, उसे बुरे का भी है। भाई, तुम दोनों के परे चले जाओ, सुख-दु:ख के परे जाओ, ज्ञान-अज्ञान के परे जाओ।' इसीलिए तुझे कहता हूँ, ज्ञान-अज्ञान के परे चला जा। ... ...''

संध्या हुई। धीरे-धीरे मन्दिर में आरती का शब्द सुनायी देने लगा। आज फाल्गुन की शुक्ला अष्टमी तिथि; छह-सात दिनों के बाद पूर्णिमा के दिन होली महोत्सव होगा।

देवमन्दिर का शिखर, प्रांगण, बगीचा, वृक्षों के ऊपर के भाग चन्द्रकिरण में मनोहर रूप धारण किये हुए हैं। गंगाजी इस समय उत्तर की ओर बह रही हैं, चाँदनी में चमक रही हैं, मानो आनन्द से मन्दिर के किनारे से उत्तर की ओर प्रवाहित हो रही हैं। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में छोटे तखत पर बैठकर चुपचाप जगन्माता का चिन्तन कर रहे हैं। उत्सव के बाद अभी तक दो-एक भक्त रह गये हैं। नरेन्द्र पहले ही चले गये।

आरती समाप्त हुई। श्रीरामकृष्ण भावविभोर होकर दक्षिण-पूर्व के लम्बे बरामदे पर धीरे धीरे टहल रहे हैं। मास्टर भी वहीं खड़े-खड़े श्रीरामकृष्ण की ओर देख रहे हैं। श्रीरामकृष्ण एकाएक मास्टर को सम्बोधित कर कह रहे हैं, ''अहा, नरेन्द्र का क्या ही गाना है!''

मास्टर – जी, 'घने अन्धकार में', वह गाना!

श्रीरामकृष्ण – हाँ, उस गाने का बहुत गम्भीर अर्थ है। मेरे मन को मानो अभी तक खींचकर रखा है।

श्रीरामकृष्ण – अन्धकार में ध्यान, यह तन्त्र का मत है। उस समय सूर्य का आलोक कहाँ है?

श्री गिरीश घोष आकर खड़े हुए। श्रीरामकृष्ण गाना गा रहे हैं।

(भावार्थ) – ''ओ रे! क्या मेरी माँ काली है? ओ रे! कालरूपी दिगम्बरी हृत्पद्म को आलोकित करती है।''

श्रीरामकृष्ण मतवाले होकर खड़े खड़े गिरीश के शरीर पर हाथ रखकर गाना गा रहे हैं –

(भावार्थ) ''गया, गंगा, प्रभास, काशी, कांची आदि कौन चाहता है। ...''

(भावार्थ) ''इस बार मैंने अच्छा सोचा है। ...

शेष भाग पृष्ठ १७८ पर

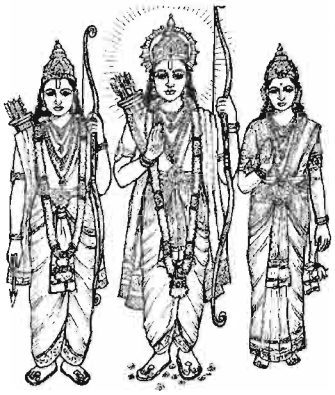

यथार्थ शरणागति का स्वरूप (६/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

एक बार भगवान श्रीकृष्ण ने भीम से कहा कि मैं तुम्हें क्या पुरस्कार दूँ? भीम ने कहा – महाराज, आप जितना प्रेम द्रौपदी से करते हैं, उतना मुझसे कीजिये। आप दरवाजे पर खड़े रहे, इतना तिरस्कार सहते रहे, कितना आपके मन में द्रौपदी के प्रति अपनत्व होगा, प्रेम होगा ! पर वह संकेत बड़ा सुन्दर सूत्र है। वह सत्य तो हमारे आपके जीवन का सत्य है। उसका संकेत हमें इस घटना में प्राप्त होता है कि भगवान जब सारथि बने, तो सारथि का नियम है कि सारथि पहले महारथी का हाथ पकड़कर रथ पर बिठाता है। भगवान नित्य यही करते थे। सायंकाल होता था, तो पहले रथ से उतरते थे, फिर अर्जुन से रथ से उतरने का अनुरोध करते थे और अर्जुन भगवान का हाथ पकड़कर उतरते थे। पर जब युद्ध समाप्त हुआ, तो उस दिन क्या हुआ? भगवान ने अुर्जन से कहा, अर्जुन आज तो तुम पहले उतरो। अर्जुन को आश्चर्य तो हुआ, पर प्रभु कह रहे हैं, तो ठीक ही कह रहे होंगे, ऐसा सोचकर उतर गये। उनके उतरते ही एक अद्भुत दृश्य हुआ। अर्जुन के रथ पर जो हनुमानजी महाराज विराजमान थे, जिससे अर्जुन कपिध्वज कहे जाते हैं, अचानक वे हनुमानजी अन्तर्धान हो गये और भगवान के उतरते ही वह रथ भस्म होकर नष्ट हो गया। अर्जुन ने चकित होकर पूछा, महाराज, यह क्या हो गया? उन्होंने कहा – अर्जुन, तुमने शस्त्र चलाए, तो उधर के योद्धाओं ने भी तो शस्त्र चलाए होंगे। पर आज तक यह रथ इसीलिए बचा रहा कि यह मेरा संकल्प था। भगवान अर्जुन को जो उत्तर देते हैं, वह केवल अर्जुन के लिये नहीं है, हमारे आपके, सबके लिए सत्य है।

हम लोगों के शरीर रथ पर बैठकर भगवान यही कहते हैं कि मैं लड़ूँगा नहीं, लड़ना तो तुम्हें होगा, मैं तो बैठा रहूँगा। लेकिन जीव अगर इस भ्रम में पड़ जाय, तो भगवान बताना चाहते हैं कि इस शरीर के रथ पर जब तक मैं बैठा हुआ हूँ, तभी तक यह सुरक्षित है। जिस दिन मैं उतर जाऊँगा, तब तो भस्म होना ही होगा इसको। भस्म होता ही है। गीता का यह सत्य तो जीवन में प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है।

इस शरीर रथ से ईश्वर को जो कार्य जब तक लेना है, तब तक यह कार्य वह ले रहा है। वैसे तो लगता है कि वाह, इसमें ईश्वर क्या हम ही तो सब कुछ कर रहे हैं। पर जिस दिन वह रथ से उतर जायेगा, तब कर लीजियेगा ! उस दिन आपका सिर भी होगा, आँखें भी होंगी, शरीर भी होगा, पर कुछ भी नहीं कर सकेंगे। वस्तुत: वह परम प्रकाशक ईश्वर और उसकी शक्ति जिस जीव ने प्राप्त की है, वह जीव ही कुछ करने में समर्थ होता है। ऐसी स्थिति में जीव को, अर्जुन को भगवान यही उपदेश देते हैं –

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

अर्जुन जीव ही ऐसा है, जो न जलता है, न कटता है, न मरता है। और सब तो नाशवान हैं। मानो विभीषण को निर्भय हनुमानजी ने बनाया कि ये सब जल जानेवाले हैं, इनमें से तुम्हीं एक अकेले ऐसे हो, जिसका नाश नहीं होगा। इसीलिए गोस्वामीजी ने बहुत बढ़िया बात लिखी कि ज्यों ही विभीषणजी लंका से निकले, तो रावण यह समझता था कि चलो यह बला टली, इसके रहते लंका भस्म हो गई, इतनी हानि हुई, अब इससे बच जाएँगे। लेकिन वह नन्हीं-सी लघुकथा है न। तेरह यात्री जा रहे थे। मार्ग में भीषण वर्षा होने लगी। उन सबने एक छोटी-सी कुटिया में आश्रय लिया। उसमें तेरहों बैठ गये। बिजली बार-बार ऐसी कौंधती थी, कड़कती थी कि ऐसा लगता था कि बस अब वहीं गिरने वाली है। ऐसी एक धारणा है कि बिजली प्राकृतिक कोप का चिन्ह है, यह उसी पर गिरती है, जो पापी है। उनमें से किसी ने कहा कि हममें से कोई-न-कोई

पापी है, जिसके कारण बिजली गिर सकती है। इसलिये हम एक-एक करके बाहर निकलें, जो पापी होगा, उसके ऊपर बिजली गिरेगी। एक के कारण हम सब क्यों मरें? एक व्यक्ति गया, लेकिन बिजली नहीं गिरी। प्रसन्न होकर लौट आया। अब तो प्रमाण पत्र मिल गया कि हम पापी नहीं हैं। बारह गये और बारहों सुरक्षित लौट आए और तब बारहों ने तेरहवें को देखा कि बस अब तो यही एक बचा है। यही महापापी होगा। पर आश्चर्य ! उसके निकलकर जाते ही बिजली गिरी और बारहों जल कर नष्ट हो गये। तब पता चला कि उसी के कारण इतनी देर बचे हुए थे। उसके अलग होते ही भस्म हो गये। यही बात गोस्वमीजी ने कही। रावण को भ्रम था कि विभीषण के कारण ही यह सब अनर्थ हो रहा है। पर आज तक जो कुछ बचा रहा, वह तो विभीषण के कारण ही बचा रहा। गोस्वामीजी कवितावली रामायण में कहते हैं –

बेद बिरुद्ध महामुनिशुद्ध त्रिलोक चराचर सोच उबारे,
और कहाँ कहूँ सीय हरी पे तउ करुनानिधि कोप निवारे।
सेवक छोहत छोड़ि क्षमा तुलसी लख्यो राम सुभाय तिहारे,
तौ लौ न दावि दल्यो दसकन्धर जौ तो न लात बिभीषन मारे।।

जिस समय विभीषण लंका से चले, तो शंकरजी ने कहा, देख लो। क्या?

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं।
आयूहीन भए सब तबहीं।। ५/४१/१

जब जीव रूपी विभीषण चला गया, तो अब आयुहीन होना तो अवश्यम्भावी है।

साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी।।
रावन जबहिं बिभीषण त्यागा।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।। ५/४१/२-३

आज तक लंका विभीषण के पुण्य और उनकी साधना के कारण सुरक्षित थी। उसका लाभ रावण ले रहा था। विभीषण को यह अनुभूति संत के द्वारा होती है। संत मानो यह बताना चाहता है कि इस तरह से जीव अपने को ईश्वर से सम्बद्ध कर ले, तब इन विषय-वस्तुओं के विनष्ट होने में कोई संदेह ही नहीं है। उसको दूसरे ढंग से भक्त कहते हैं कि भई, आग जल रही थी, तो पानी से क्यों नहीं बुझी? बोले, जो आग पानी से बुझा करती है, वह आग होती, तो बुझ जाती। प्रह्लाद के प्रसंग में भी कहा जाता है,

ढूँढा (होलिका) हिरण्यकशिपु की बहन थी, उसको ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया था कि तुम अग्नि में नहीं जलोगी। उसने जब देखा कि प्रह्लाद की मृत्यु नहीं हो रही है, तो उसने कहा कि अब तो एक ही उपाय है कि मैं प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठ जाऊँ और मुझे तो आशीर्वाद है अग्नि में नहीं जलने का, मैं तो नहीं जलूँगी और प्रह्लाद जल जायेगा, तुम्हारी समस्या दूर हो जायेगी। आश्चर्य है ! जब लकड़ी सजाई गई, जिसको प्रतीक के रूप में होली कहते हैं, जब अग्नि प्रज्वलित हुई, तो वह ढूँढा राक्षसी तो जलकर नष्ट हो गई और प्रह्लाद ज्यों-के-त्यों बच गये। लोगों ने कहा, अरे यह तो महात्माओं का वरदान झूठा हो गया। शंकरजी ने कहा, वह वरदान तो अग्नि से बचने का था न ! पर वह उस अग्नि में नहीं जली थी। तब? बोले –

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ।।
जो अपराधु भगत कर करई।
राम रोष पावक सो जरई।। २/२१७/४-५

वह तो ईश्वर के क्रोध की अग्नि है। उसके लिए कौन वरदान देगा? इसी प्रकार से बड़ा सुन्दर श्लोक आपने सुना होगा। हनुमानजी ने लंका को किस आग से जला दिया? –

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं,
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः
आदाय तेनैव ददाह लंकां

हनुमानजी ने श्रीसीताजी की शोकाग्नि से लंका को जला दिया। वह जल से कैसे बुझेगी? उस अग्नि ने श्रीसीताजी को इतना कष्ट दिया, इतनी पीड़ा पहुँचायी कि हनुमानजी ने कहा कि जो भक्तों को इस प्रकार से पीड़ा पहुँचाता है, वह तो वस्तुतः उस अग्नि के द्वारा ही जलाने योग्य है। संत लोग यही उलट-पलट किया करते हैं। हनुमानजी जब माँ सीता के पास गये, तो लीला में उन्होंने माँ के सामने तीन वस्तुएँ प्रगट कीं। एक तो माँ सशंकित हैं, उन्हें बार-बार संदेह हो जाता है –

मोरें हृदय परम संदेहा । ५/१५/७

अब हनुमानजी ने देखा कि माँ दुखी हैं, तो हनुमानजी ने मन में निर्णय कर लिया कि माँ के दुख को नष्ट नहीं करना है, माँ के दुख को ले लेना है। कैसे लेना है?

रामचंद्र गुन बरनैं लागा।

सुनतहिं सीता कर दुख भागा।। ५/१२/५

जब वे रामकथा सुनाने लगे, तो सीताजी का दुख भागने लगा। यह शब्द बड़ा साहित्यिक है। मानो दुख डर गया कि हनुमानजी ही जब मिटाने पर तुले हुए हैं, तो हम कहाँ से बचेंगे। तब दुख को भागते हुए देखकर हनुमानजी ने कहा, डरो मत, मैं तुम्हें मारूँगा नहीं। तुम मेरे साथ चलो, तुम्हारा उपयोग मैं अन्यत्र करूँगा। उस दुख को लेकर वे भगवान राम के पास गये और भगवान राम को ऐसी कथा सुनाई कि भगवान रोने लगे। सीताजी को ऐसी कथा सुनाई कि दुख भागा और सुख आ गया और भगवान राम को ऐसी कथा सुनाई कि भगवान रोने लगे –

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना।

भरि आए जल राजिव नयना।। ५/३१/१

मानो उनका अभिप्राय था कि माँ, दुख उपयोगी है। आपने कथा सुन ली, तो अब आपका दुख प्रभु अपनी आँखों में ले लेंगे। अब प्रभु को दुख दूर करने की चिन्ता होगी। इससे बढ़कर दुख का सदुपयोग क्या हो सकता है कि भगवान में करुणा का संचार हो जाये, उनकी आँखों से आँसू निकल आवे। इस प्रकार से हनुमानजी ने वस्तुओं का संयोजन किया।

श्रीसीताजी अग्नि माँग रही थीं – अग्नि ! अग्नि ! अग्नि। हनुमानजी ने कहा, माँ ! आपको अग्नि की आवश्यकता नहीं है। उसको ले जाकर उसका उपयोग मैं लंका में कर लूँगा।

जब श्रीसीताजी ने यह कहा कि 'मोरें हृदय परम संदेहा', तो गोस्वामीजी ने यह निर्णय किया कि माँ, आपके हृदय में शंका का क्या काम? भक्ति तो विश्वास का घनीभूत रूप है – **बिनु बिस्वास भगति नहिं।** इसलिए संशय आपके हृदय में नहीं है। उस संशय को किसके हृदय मैं बैठा दिया? गोस्वामीजी ने लिखा –

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका।

जब तें जारि गयउ कपि लंका।। ५/३१/१

सारे राक्षसों में अभी तक तो रावण पर बड़ा भरोसा था, पर रावण के देखते एक बन्दर ने लंका को भस्म कर दिया। तो अब ऐसा संशय पैठ गया कि राक्षसों को शंका हो गई कि एक बन्दर ने तो सारी लंका जला दी, जब सारे बन्दर आयेंगे, तो हम लोगों की क्या दशा होगी? संशय उलट गया। वहाँ से निकल कर वह संशय यहाँ आ गया। पराकाष्ठा की बात तो तब हो गई कि जब रावण ने दो गुप्तचरों को यह देखने के लिये भेजा कि जाओ देखो, विभीषण उसकी शरण में गया है, जब वह मिला, तो उस तपस्वी ने क्या व्यवहार किया, उससे क्या बातचीत हुई? जब गुप्तचर लौटकर आए, तो बोले -

मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा।

जातेहिं राम तिलक तेहि सारा।। ५/५३/२

जैसे ही आपका भाई जाकर मिला, तो राम ने उसका तिलक कर दिया। खूब हँसा रावण। कितना चतुर तपस्वी है, राज्य दे दिया। खुद का राज्य तो छिन गया है और मेरा राज्य विभीषण को दे दिया। विभीषण जैसा मूर्ख कोई हो सकता है? यहाँ जीते जी लंका में राज्य कर रहा था और वहाँ उस भिखारी के पास जाकर उसने पानी लेकर तिलक कर दिया, और उसने मान लिया, कैसा नासमझ है ! मेरे पास रहकर इतना निर्बुद्धि ! इसकी क्या दशा है ! गुप्तचरों ने देखा कि रावण उनकी बात पर हँस रहा है। अचानक रावण ने पूछ दिया, अच्छा उस तपस्वी की सेना में जो बड़े-बड़े योद्धा हैं, उनका नाम तो बताओ। तो गिनाने लगे –

द्विबिद मयंद नील नल अंगद गद बिकटासि।

दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत बलरासि।। ५/५४

ए कपि सब सुग्रीव समाना।

इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना।। ५/५४/१

इतने नामों को सुनने के बाद, हनुमानजी तो अपना नाम बिना बताए चले गये थे। रावण ने कहा, ये जो तुम नाम गिनाए हो, उसमें जो बन्दर यहाँ आकर लंका को जलाया था, उसका नाम क्या है? द्विबिद, मयंद, नील, नल क्या नाम है उसका? दूत ने कहा, महाराज विशिष्ट बन्दरों में तो उसका नाम ही नहीं, वह तो नगण्य है। ऐसे बन्दरों का नाम गिनाएँगे, तो नाम कभी खतम ही नहीं होगा। तो क्या उसका नाम पता नहीं चला? पता क्या चलता, वह तो वहाँ कहीं दिखा भी नहीं।

जेहिं पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा।

सकल कपिन्ह महँ तेहि बलु थोरा।। ५/५३/७

जिसने लंका जलायी, आपके पुत्र को मारा, वह तो सबसे कम बलवाला है। **(क्रमशः)**

श्रीरामचन्द्र के जीवन में विनम्रता

स्वामी मेधजानन्द

जीवन में बल और विनम्रता, दोनों का एक साथ होना एक दुर्लभ संयोग माना जाता है। जिस व्यक्ति में विद्याबल, शरीरबल और धन का बल होता है, उसमें कभी-कभी श्रेष्ठता मनोग्रन्थि का निर्माण हो जाता है। बल के मद में व्यक्ति की उच्चतर भावनाएँ भी कठोर हो जाती हैं। किन्तु जब बलवान व्यक्ति में विनम्रता का गुण आता है, तब उसका जीवन सोने पे सुहागा हो जाता है, उसका चरित्र सुदृढ़ हो जाता है।

भगवान श्रीरामचन्द्र के जीवन में हम शक्ति और विनम्रता का विलक्षण समन्वय पाते हैं। श्रीराम का पराक्रम अतुलनीय था। उनके गुरु विश्वामित्र के द्वारा उन्हें विभिन्न शक्तियाँ और दिव्यास्त्र प्राप्त हुए थे। इसके अलावा उन्हें सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान था, किन्तु उनके शब्दों में हमें कहीं भी विद्या अथवा शक्ति का दंभ नहीं दिखता था, बल्कि उनके प्रत्येक शब्दों से मानो विनम्रता प्रस्फुटित होती थी। किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे वज्र के समान कठोर भी हो जाते थे।

राजा जनक की सभा में धनुष-भंग के पश्चात् जब क्रोधोन्मत्त परशुराम जी आते हैं और यह पूछते हैं कि उनके गुरु शिवजी का धनुष किसने तोड़ा, उस समय श्रीराम जी के उत्तर में विनय की पराकाष्ठा दिखाई देती है। परशुराम जी को आवेशावतार कहा जाता है। परशुराम जी शिव-धनुष तोड़ने वाले को मृत्यु-दंड ही देने आए थे। सभा में और भी अनेक राजा उपस्थित थे। उन्होंने जब परशुराम जी को देखा, तो भय के मारे काँपने लगे और उन्हें प्रणाम करने लगे। श्रीराम जी ने भी उन्हें प्रणाम किया। किन्तु श्रीराम जी के प्रणाम करने और अन्य राजाओं के प्रणाम करने में अन्तर था। अन्य राजाओं की विनम्रता भयप्रसूत थी, किन्तु श्रीराम ने तो अपने विनम्र-स्वभाव परवश ही प्रणाम किया। जब भरी सभा में किसी में भी यह कहने का साहस नहीं हुआ कि किसने धनुष तोड़ा, तब श्रीराम आगे आए और कहा,

नाथ संभुधनु भंजनिहारा।
होइहि केउ एक दास तुम्हारा।।

– शिव-धनुष तोड़ने वाला आपका कोई सेवक ही होगा।

परशुराम जी ने सोचा होगा कि जिसने धनुष तोड़ा है, वह सीना तानकर खड़ा होगा। किन्तु श्रीराम के विनयरूपी जल ने परशुराम जी की क्रोधाग्नि को पूर्ण रूप से शान्त कर दिया।

व्यक्ति को जब कोई बहुत बड़ी सफलता मिलती है, तब उसका आत्मविश्वास बढ़ता है। यदि व्यक्ति में आत्मविश्वास न हो, तो उसका जीवन बोझ ढोने वाले पशु के समान हो जाता है। किन्तु यह भी देखना है कि यह आत्मविश्वास कहीं दंभ अथवा अहंकार का रूप न धारण कर ले। अच्छे कार्य का श्रेय तो हम ले लेते हैं, किन्तु कार्य में जब कोई त्रुटि दिखती है, तो हम उसे किसी दूसरे के मत्थे मढ़ देते हैं। श्रीरामजी का चरित्र हम यदि देखें, तो वे सफलता अथवा अच्छे कार्यों का श्रेय सदैव दूसरों को ही देते रहे।

रावण को पराजित करने के बाद वे युद्ध-विजय का श्रेय वानरों और भालुओं को देते हुए कहते हैं –

तुम्हरे बल मैं रावनु मारयौ ।

अयोध्या में लौटकर भी वे गुरुदेव वसिष्ठ के सामने वानरों की प्रशंसा में कहते हैं –

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। ७/७/७-८

– हे मुनि! सुनिए! ये सब मेरे सखा हैं। ये संग्रामरूपी समुद्र में मेरे लिए बेड़े के समान हुए। मेरे हित के लिए इन्होंने अपने प्राणों तक की आहुति दे दी।

पुष्पक विमान में माता सीता एवं अन्य सहचरों के साथ जब वे अयोध्या प्रत्यागमन करते हैं, तब मार्ग में भी माता सीता से वे हनुमान, अंगद आदि के पराक्रमों का बखान करते हैं।

विनम्र व्यक्ति में ही विद्या की पूर्णता होती है। जैसे फलों से लदा हुआ वृक्ष झुक जाता है, उसी प्रकार यथार्थ विद्यावान व्यक्ति भी नम्र हो जाता है। बाहर से भले ही उसमें कठोरता

शेष भाग पृष्ठ १६८ पर

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१६)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

यहीं पर शंकरजी सेठ का थोड़ा-सा परिचय देता हूँ । वे गृहस्थ थे और वर्णओरा नागर ब्राह्मण थे । वर्णओरा नागर लोग प्राय: गौरवर्ण तथा सुन्दर हुआ करते हैं । सेठजी आजानु-लम्बित-बाहु दीर्घकाय व्यक्ति थे । उनका ऊपर का होठ स्वाभाविक रूप से कटा हुआ था और नेत्र बड़े-बड़े होने के बावजूद उन्हें लोगों का मुख देखने के लिये अपनी आँखों को उनके मुख के पास लाना पड़ता था ।

मैं जब उनके पास गया, तो वे विधुर और नि:सन्तान थे । दो भतीजे, दो भतीजियाँ, एक विधवा भाभी, ये ही उनकी विपुल सम्पत्ति के उत्तराधिकारी थे ।

थोड़े दिन उनके यहाँ रहने के बाद मैंने देखा कि उनकी वृद्ध सुश्री माता की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता । अपने मोटे-मोटे कपड़े उन्हें स्वयं ही धोकर साफ करने पड़ते । घर में सभी लोगों के लिये खानसामा थे, परन्तु उनकी माँ के लिये कोई नौकरानी तक नहीं थी । सेठजी का अपनी माता के प्रति ऐसा अनादर-भाव देखकर मैं सोच रहा था कि उनसे इस विषय में बात करूँ । तभी एक दिन कपड़े निचोड़ते हुए वृद्धा गिर पड़ीं । उस दिन मैंने सेठजी से कहा, "आपके पास इतनी सम्पत्ति है, इतने आदमी हैं, इसके बावजूद आपकी बूढ़ी माता की ऐसी हालत क्यों है? हमारे अंचल में तो ऐसा नहीं होता ।"

सुनकर सेठजी बोले, "हमारे क्षेत्र में विवाह हो जाने के बाद कोई अपनी माता की खोज-खबर नहीं लेता । यह बड़ी खराब प्रथा है । कहिये, मुझे क्या करना होगा?" मैंने कहा, "प्रतिदिन माँ को प्रणाम करके पूछिये – आपकी क्या इच्छा है?" सेठजी के वैसा करने पर वृद्धा ने कोई उत्तर नहीं दिया । सेठजी प्रतिदिन एक चवन्नी देकर माँ को प्रणाम किया करते थे । वृद्धा मुझे धन्यवाद देतीं, परन्तु घर के बाकी सभी लोग मुझ पर रुष्ट हो गये ।

सेठजी की दिनचर्या

सेठजी प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर हल्के गरम जल से स्नान करके पूजा में बैठ जाते । एक वेतनभोगी ब्राह्मण आकर उनसे पूजा कराते । प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन तथा शिवपूजा के उपरान्त चण्डी तथा गीता के तीन अध्यायों का अध्ययन करने के बाद बिल्वपत्र, तुलसीपत्र तथा पुष्प आदि लेकर वे ब्राह्मण के साथ वीरभजन तथा कल्याणजी के मन्दिर में दर्शन करने जाते ।

मन्दिर से लौटने के बाद हजार दानों की एक तुलसी-माला के साथ वे अपने बैठकखाने में आसीन होकर जप करते थे । उसी समय वे याचकों की इच्छापूर्ति तथा आगन्तुकों के साथ वार्तालाप भी करते । इसके बाद उनके दैनन्दिन कार्य आरम्भ हो जाते । किसी भी कारण से इन नियमों का उल्लंघन नहीं होता था ।

एक सदावर्त तथा मुष्टिभिक्षा की व्यवस्था होने के बावजूद उनके घर में बहुत-से ब्राह्मण उनके साथ बैठकर भोजन करते थे । साधु-संन्यासी तथा भिक्षुक उनके घर आकर खाली-हाथ नहीं लौटते थे ।

मुझे प्रतिदिन भजन सुनाने के लिये सेठजी ने एक ब्राह्मण गायक को नियुक्त कर रखा था, जो स्वामी विवेकानन्द जी के परिचित थे । उनका नाम मूलजी था । काठियावाड़ के एक सम्पन्न ग्राम में स्वामीजी ने उनके मुख से भक्तकवि सूरदासजी का – 'दयानिधे तेरी गति लखि ना परे', 'प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो' – आदि भजन और विशेषकर सुबह 'शशधर तिलक भाल गंगा जटा पर' भजन सुनना पसन्द करते थे ।

सेठजी के घर में

मैं सेठजी के घर में प्रतिदिन रात के करीब दो बजे तक पढ़ता-लिखता रहता था । वे उस समय आकर बलपूर्वक मेरी पढ़ाई बन्द करा देते ।

वहाँ निवास के दौरान एक दिन सहसा नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी आकर मुझसे बोले कि कराची में वे स्वामी ब्रह्मानन्द तथा स्वामी तुरीयानन्द से परिचित हुए और उनके मुख से मेरे बारे में सुनकर जामनगर चले आये हैं। उनके वस्त्र आदि का अभाव दूर कराने के बाद मैंने उन्हें उनके गन्तव्य-स्थान को भेज दिया। बाद में इन्हीं नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी ने कई टीकाओं के साथ श्रीमद्भागवत का एक नवीन संस्करण प्रकाशित कराया।

मैं उन दिनों हर रोज काठ के एक छोटे प्याले में नमकीन काफी पीया करता था। अरब के लोग इसे बड़ा पसन्द करते हैं। वहाँ पर राजा के यहाँ अनेक अरबी खानसामा थे।

सेठजी का मेरे प्रति अनुराग क्रमश: बढ़ता जा रहा था। शाम के समय वे अपने भतीजों की जगह मुझे ही गाड़ी में बैठाकर घुमाने ले जाते। यह सब क्रमश: उनके भतीजों को पूरी तौर से असह्य हो उठा।

सेठजी के सगे-सम्बन्धी मेरे ऊपर नाराज थे, उसी के साथ एक घटना और हो गयी। एक दिन सुबह सेठजी मन्दिरों में दर्शन करने गये थे। उसी समय एक अतिथि साधु आये। उनके यहाँ जो व्यक्ति मुष्टिभिक्षा दिया करता था, उसी से साधु ने उस दिन भोजन की बात कही। वह बोला, "एक साधु यहाँ खाते हैं, तुम चले जाओ।" नौकर के इस व्यवहार पर मैं यह कहते हुए बाहर चला गया, "आज मैं यहाँ नहीं खाऊँगा।" लौटकर देखा वे ही साधु सेठजी के पास बैठे हुए हैं। मुझे अपार आनन्द हुआ। सेठजी बोले, "आपने कहा कि नहीं खाऊँगा, इसीलिये सोचा है कि इन्हीं को साथ लेकर खाऊँगा।" सेठजी की ऐसी आदत थी कि किसी साधु को साथ लिये बिना वे भोजन नहीं कर पाते थे।

मैंने सेठजी से नौकर की सारी बात कह दी। उन्होंने नौकर को बुलाकर डाँटा और बता दिया, "अब से चालीस साधु आ जायँ, तो भी उन्हें मत लौटाना। ईश्वर की कृपा से मुझे कोई अभाव नहीं है।"

इस घटना से सेठजी के घर के लोग और भी चिढ़ गये। जब मुझे प्रतिदिन भजन सुनाने के लिए सेठजी ने विख्यात गायक श्री मूलजी को ठीक किया, तब तो उन लोगों के क्रोध की सीमा ही न रही।

इधर मेरा चातुर्मास्य व्रत पूरा हो चुका था और एक गृहस्थ के घर में रहना भी उचित नहीं था। फिर देखा कि जितनी मात्रा में सेठजी की मेरे ऊपर माया-ममता बढ़ रही थी, उसी मात्रा में उनके घर के लोगों की मुझ पर नाराजगी बढ़ती जा रही थी। अत: मैंने सेठजी से अन्यत्र जाने की बात कही। वे रोते हुए मेरे पाँव पकड़ने लगे। बोले, "मैं आप लोगों के मठ के प्रमुख स्वामी ब्रह्मानन्द को लिखकर आपके यहाँ रहने की अनुमति मँगा लूँगा और यहाँ श्रीरामकृष्ण का एक मन्दिर बनवाकर उनके पूजन की व्यवस्था कर दूँगा।"[१]

मैं डर गया। मैं अपने माँ-बाप तथा घर की माया को छोड़कर ईश्वर को पाने के लिये घर छोड़कर बाहर निकला हूँ, तो क्या इनकी माया में आबद्ध हो जाऊँगा? मैंने संकल्प किया कि सेठजी को बिना बताये ही रात के समय छिपकर चला जाऊँगा। परन्तु निकलते समय मैंने देखा कि सेठजी भयंकर बुखार में पड़े कराह रहे हैं। इससे मेरा मन द्रवित हुआ और मैंने सोचा कि इनके स्वस्थ हुए बिना नहीं जा सकूँगा। मैं सेठजी की सेवा हेतु ठहर गया।

विष-प्रयोग

जामनगर में काफी पीने का खूब प्रचलन है। मैं भी प्रतिदिन काफी पीया करता था। सेठजी के नीरोग हो जाने के बाद एक दिन मैं काफी पी रहा था। मुझे उसका स्वाद बड़ा तीखा लगा और मैंने देखा कि उसके ऊपर तेल-जैसा कुछ तैर रहा है। सोचा कि शायद काफी के पानी में मसाले का हाथ लग गया है और यहाँ के लोग इतने अधिक घी का उपयोग करते हैं; सम्भव है कि इसका घी से स्पर्श हो गया हो। किसी को कुछ कहे बिना ही मैंने उसकी छोटी-छोटी चार कटोरियाँ पी डालीं। थोड़ी देर बाद ही मुझे दस्त लगने आरम्भ हुए। करीब पूरे दिन दस्त होते रहे और चार दिनों तक उठने की शक्ति न रही। उस समय झण्डू विठ्ठल भटजी ने मेरे औषध-पथ्य आदि की व्यवस्था की।

थोड़े दिनों बाद सेठजी के पूरी तौर से स्वस्थ हो जाने पर एक दिन मैं भागकर झण्डू भटजी के घर गया। उनसे बोला, "अब मैं सेठजी के घर नहीं लौटूँगा।" भटजी ने आनन्दित होकर कहा, "बड़ा उत्तम संकल्प है। मैंने सुना है कि उस घर में आपको विष देने का षड्यंत्र चल रहा है।

१. बाद में स्वामी विवेकानन्द ने यह बात सुनकर कहा, "क्यों नहीं ले लिया? वैसा होने पर हम लोग वहाँ एक बहुत बड़ी संस्था बना डालते।"

शेष भाग पृष्ठ १८७ पर

अहिंसा परमो धर्मः

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

प्रस्तावना – मानव जाति की हजारों वर्ष की संस्कृति और सभ्यता के बावजूद आज भय और हिंसा हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग बने हुए हैं। हमने इन्हें जीवन पद्धति का अनिवार्य और स्वाभाविक अंग मान लिया है। भले ही हम किसी की हिंसा न करते हों, लेकिन द्वेष, घृणा, दूसरों के दोष देखना आदि हमारे मन में विद्यमान हैं। युद्ध, हत्या और अपराध के समाचारों में हमारी तीव्र रुचि हमारी हिंसक प्रवृत्ति की ओर स्पष्ट संकेत करती है।

लेकिन आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व भारत में अहिंसा पर आधारित समाज रचना के दो महत्त्वपूर्ण प्रयोग हुए थे। वर्धमान महावीर द्वारा प्रवर्तित जैन धर्म ने अहिंसा को जीवन का केन्द्र-बिन्दु मानकर मानवों को ही नहीं बल्कि छोटे-से-छोटे कीड़े तक की हत्या को त्याग कर मानव-जाति को विकास के एक उच्चतर सोपान तक उठाने का प्रयास किया था। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को अंगीकार कर अहिंसा को एक राजधर्म के रूप में स्वीकार किया था।

पातंजल योगसूत्र के अनुसार अहिंसा पाँच यमों में पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो अष्टांग योग का एक अंग होने के कारण अहिंसा एक साधन मात्र है। लेकिन यह इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसे यदि लक्ष्य एवं परम धर्म मानें, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। व्यास देव के अनुसार अन्य सभी यम-नियम का मूल अहिंसा ही है तथा वे अहिंसा की सिद्धि का कारण होने से अहिंसा-प्रतिपादन के लिये ही शास्त्र में वर्णित हुए हैं। सभी धर्मों में इसे महत्त्व दिया गया है, तथा अहिंसा को किसी-न-किसी प्रकार से अपने जीवन में स्थान दिये बिना धार्मिक जीवन सम्भव नहीं है। अत: इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त एवं जीवन के अनिवार्य अंग को भलीभाँति समझ लेना परम आवश्यक है।

अहिंसा का अर्थ – सामान्यत: हिंसा का अर्थ है दूसरे को मारना, या कष्ट पहुँचाना और अहिंसा का अर्थ है किसी को कष्ट न पहुँचाना। व्यास के अनुसार अहिंसा का अर्थ है – **सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानां अनभिद्रोहः** – अर्थात् सदा सभी प्राणियों के प्रति सभी प्रकार के द्वेष-द्रोह भाव का त्याग।

अहिंसामूलक जैन धर्म के प्रवर्तक वर्धमान महावीर कहते हैं – "जिसे तू हनन करने योग्य मानता है, वह तू ही है, जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है।" जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है। अत: आत्महितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीव-हिंसा का परित्याग किया है। प्राणी-हत्या करना स्वयं की हत्या के समान है, इस बात की प्रतिध्वनि ईशावास्योपनिषद में भी मिलती है –

असूर्यानां ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।

अर्थात् आत्मा का हनन करनेवाले लोग मरणोपरान्त अन्धकार से आवृत लोकों को जाते हैं। जो अज्ञानी लोग अपने अद्वय आत्मस्वरूप को नहीं जानते, वे मरणोपरान्त पुन:-पुन: जन्म ग्रहण करते हैं तथा पुन:-पुन: मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अर्थात् बार-बार अपनी ही मृत्यु का कारण बनते हैं। देहात्मबोध के कारण हम स्वयं को दूसरों से पृथक् समझते हैं तथा उसके कारण राग द्वेषादि उत्पन्न होते हैं। जहाँ द्वैत है, दो हैं, वहीं भय है, **द्वितीयाद्वै भयं भवति**। भगवान महावीर का कथन है, राग आदि की अनुत्पत्ति ही अहिंसा है तथा उनकी उत्पत्ति हिंसा है।

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिः हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।

तात्पर्य यह कि अद्वैत में प्रतिष्ठित होकर रागादि को जीते बिना अहिंसा में प्रतिष्ठा सम्भव नहीं है।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार भी हम कुछ इसी प्रकार के निष्कर्ष पर आते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार शरीर का जन्म तथा मृत्यु उसके सुख-दुख सभी प्रारब्ध कर्म के अधीन होते हैं। अत: यदि कोई किसी की हत्या करता है, अथवा किसी को कष्ट पहुँचाता है, तो कर्म सिद्धान्त के अनुसार इसके पीछे पूर्वजन्मों के कर्म ही उत्तरदायी हैं, तथा भविष्य में हिंसक अथवा कष्ट देनेवाले को इसका फल भोगना होगा। कहा भी गया है :

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता।
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।।
अहं करोमीति वृथाभिमानः।

स्वकर्मसूत्रेण ग्रथितो हि लोक :।।

अर्थात् सुख और दुख का दाता अन्य कोई नहीं है। यह सोचना कि दूसरा सुख-दुख प्रदान करता है, कुबुद्धि है, मैंने ऐसा किया है, यह व्यर्थ का अभिमान है। वस्तुत: सभी स्वकर्म के सूत्र द्वारा बँधे हुए हैं। तात्पर्य यह कि कर्मवाद के अनुसार परहिंसा जैसी कोई चीज नहीं है। दूसरे को मारने से स्वयं की ही हानि होती है। यदि किसी व्यक्ति या पशु को बाँधकर उसकी शक्ति का हनन किया जाय, तो इसके परिणामस्वरूप बन्धनकर्ता की इन्द्रियाँ निस्तेज हो जाती हैं। दूसरों को दुख प्रदान करने पर नारकीय दुख प्राप्त होता है तथा दूसरे का प्राण हरने से या तो व्यक्ति अल्पायु होता है, अथवा दीर्घायु होने पर भी रुग्ण होता है। इस तरह दूसरे को कष्ट देने पर हम वस्तुत: स्वयं को कष्ट देने की ही भूमिका तैयार करते हैं।

विशुद्ध व्यावहारिक दृष्टि से यदि देखा जाए, तो भी पूर्ण अहिंसा सम्भव प्रतीत नहीं होती। शरीर-धारण के लिए न्यूनाधिक मात्रा में हिंसा को स्वीकार करना ही पड़ता है। श्वास-प्रश्वास में असंख्य कीटाणु मरते हैं, चलने-फिरने में भी छोटे-मोटे अनेक कीड़े-मकोड़े पैरों तले कुचल जाते हैं, वनस्पतियों में भी प्राण होता है तथा उसका भोजन भी एक प्रकार की हिंसा है। वस्तुत: जीवन-धारण में एक प्राणी दूसरे को आहार बनाकर ही जीवित रहता है, यह प्रकृति का विधान है। अत: व्यावहारिक, भौतिक स्तर पर पूर्ण अहिंसा असम्भव है। जो साधक इस सत्य को समझ लेते हैं, पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लेते है तथा स्वयं के अस्तित्व के लिये प्राणी-हिंसा नहीं चाहते, वे जितना शीघ्र हो संसार बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं, जिससे पुन: जन्म न लेना पड़े और न ही दूसरे प्राणियों की हिंसा करनी पड़े। वे भोग के स्थान पर योग का आश्रय लेते हैं, जो क्रमश: अल्प से अल्पतर हिंसा का मार्ग है। अहिंसा के सन्दर्भ में योग का अर्थ है – न्यूनतम हिंसा का जीवन।

स्वयं की आत्मा ही समस्त प्राणियों की आत्मा है, इस सत्य का साक्षात्कार करना ही जीवन का उद्देश्य है और जो योगी समस्त प्राणियों के सुख-दुख अपने सुख-दुख के रूप में अनुभव करता है, वह गीता के अनुसार सर्वोत्तम योगी है

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।६.२९।।
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।६.३२।।

एक संन्यासी के जीवन का चरम आदर्श इसी सत्य की उपलब्धि करना है। वह समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करता है, क्योंकि सभी प्राणी उसी के अंग हैं – **अभयं सर्वभूतेषु मत्तः सर्वं प्रवर्तते।** यही कारण है कि किसी प्राणी की हिंसा करना साध्य के विरुद्ध होने से त्याज्य है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अन्याय का प्रतिकार न करना 'Resist not Evil' संन्यास का आदर्श है, क्योंकि अन्याय करनेवाला भी उसी का एक रूप है।

अहिंसा के इस उच्चतम रूप को कुछ दृष्टान्तों के द्वारा समझा जा सकता है। एक कृशकाय तपस्वी सूफी सन्त मांस की एक दुकान के सामने से गुजरते हुए क्षण भर के लिए वहीं खड़े हो गये। उन्हें देखकर मुसलमान दुकानदार ने सलाम किया और कहा कि क्या वे मांस लेंगे। सन्त ने कहा कि उन्हें मांस की आवश्यकता नहीं है। दुकानदार ने प्रतिवाद करते हुए कहा, "जनाब, आपके शरीर में मांस बिल्कुल नहीं है, आपको तो मांस की जरूरत है, क्योंकि मांस से ही मांस बनता है।" सूफी सन्त ने क्षण भर रुक कर उत्तर दिया, "मेरी देह में जितना मांस है, उतना कब्र के कीड़ों के लिए काफी है।" और वे आगे बढ़ गये। उन सन्त के लिये स्वयं की देह कब्र के कीड़ों की देह से अधिक मूल्यवान नहीं रह गयी थी।

श्रीरामकृष्ण ने भी सर्वात्मैकत्व के अनुभव के फलस्वरूप स्वयं की रुग्ण देह को स्वस्थ करना अस्वीकार कर दिया था। घटना उस समय की है, जब वे गले के कैंसर से पीड़ित थे तथा उसके कारण कुछ भी खा-पी नहीं सकते थे। गले में तीव्र पीड़ा होती थी तथा शरीर धीरे-धीरे दुर्बल होता चला जा रहा था। गले के रोग-ग्रस्त अंश पर मन को एकाग्र करके उसे ठीक करने की सम्भावना को उन्होंने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि जो देह माँ जगदम्बा को अर्पित की जा चुकी है, उस पर वे मन को एकाग्र नहीं कर सकते। लेकिन भक्तों के अत्यधिक आग्रह को वे अस्वीकार नहीं कर सके और उनके आग्रह पर उन्होंने माँ जगदम्बा से प्रार्थना की कि गले को थोड़ा ठीक कर दें, जिससे कि वे कुछ खा सकें। माँ जगदम्बा ने जो उत्तर दिया, वह वस्तुत: श्रीरामकृष्ण की उच्चतम अद्वैत ज्ञान में प्रतिष्ठा का द्योतक है। माँ जगदम्बा ने सभी भक्तों को दिखाकर कहा कि तू इतने मुखों से तो खा रहा है। तात्पर्य यह है कि ज्ञानी महापुरुष सर्वत्र अपनी ही आत्मा का दर्शन करने के फलस्वरूप स्वयं

की देह की विशेष सेवा शुश्रूषा की इच्छा नहीं करते। वे केवल लोक-कल्याण के लिये अल्पतम हिंसा को स्वीकार कर देह धारण करते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से दो बातें स्पष्ट हो गयी होंगी। प्रथम तो यह कि हिंसा करने से स्वयं की हिंसा होती है और परहिंसा जैसी कोई चीज नहीं है। द्वितीय यह कि अहिंसा के तीन स्तर सम्भव हैं – (१) पारमार्थिक अहिंसा, अर्थात् सर्वभूतात्मानुभूति में प्रतिष्ठित होना (२) मानसिक अहिंसा, याने राग-द्वेष से रहित होना और (३) व्यावहारिक अहिंसा, जो वाचिक और शारीरिक इन दो प्रकार की हो सकती है।

पारमार्थिक अहिंसा साध्य है तथा अन्य दो साधन हैं। मानसिक अहिंसा को भाव अहिंसा भी कहा जाता है और वाचिक और शारीरिक हिंसा अथवा अहिंसा, द्रव्य हिंसा अथवा द्रव्य अहिंसा के नाम से भी अभिहित होती है। इसके अतिरिक्त अहिंसा के नकारात्मक तथा विधेयात्मक, इस तरह दो पक्ष भी हो सकते हैं। किसी को कष्ट न देना, हत्या न करना, किसी से द्वेष तथा घृणा न करना, यह नकारात्मक पक्ष है। दूसरों की सेवा, प्रेम, करुणा, मैत्री की भावना का विकास करना आदि विधेयात्मक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं। जिस समाज में अहिंसा का पालन तथा सर्वात्मभाव की प्रतिष्ठा जितनी अधिक होगी, वह समाज उतना ही अधिक विकसित समाज कहलायेगा।

पारमार्थिक अहिंसा के आदर्श को समझने एवं स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। उसी तरह मानसिक अहिंसा अर्थात् घृणा, राग, द्वेष के त्याग के विषय में विवाद सम्भव नहीं है। लेकिन स्थूल बाह्य हिंसा अथवा शारीरिक, व्यावहारिक स्तर पर हिंसा और अहिंसा का क्या रूप होना चाहिए, इस विषय को लेकर मतभेद है। एक मत के अनुसार पारमार्थिक अहिंसा में प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी भी प्रकार की हिंसा क्यों न करे, वह हिंसा नहीं कही जा सकती, जैसाकि गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया था। दूसरा मत कहता है कि जो व्यक्ति अहिंसा में प्रतिष्ठित है, वह बाह्य हिंसा का त्याग क्यों न करे। यही नहीं, अगर कोई व्यक्ति ठीक-ठीक पारमार्थिक अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाय, तो उससे किसी की हिंसा सम्भव ही नहीं है। वह प्राणियों की हिंसा करने के बदले अपने शरीर का त्याग ही श्रेयस्कर समझेगा। यह मत राम और कृष्ण जैसे शस्त्रधारी महापुरुषों को पूर्ण विरक्त शुकदेवादि की तुलना में निम्न कोटि का समझता है।

हिंसा का अर्थ

जिस प्रकार अहिंसा को एक व्यापक दृष्टि से देखा जा सकता है, उसी प्रकार व्यापक अर्थों में हिंसा के भी कई रूप हो सकते हैं। शास्त्रकारों ने हिंसा 'प्राण-वियोगानुकूल व्यापार', 'प्राण वृत्तिच्छेद' आदि पदों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। वृत्ति का अर्थ है, वह व्यवसाय या क्रिया जिससे कमाई कर हमारी जीविका चलती है। वृत्तिच्छेद का अर्थ है, उस कमाई या पोषण का मार्ग बन्द कर देना। यथा, वृक्ष को काटने के बदले उसकी जड़ से मिट्टी, जल खाद आदि हटा देना। इससे पेड़ को काटा तो नहीं, वह स्वयं बिना आहार के मर गया। अथवा किसी जानवर को तलवार से नहीं मारना, पर उसके नाक मुँह आदि बंद कर देना, अथवा किसी अपराधी को पत्थर से बाँधकर पानी में डुबो देना, जिससे वह वायु के अभाव में मर जाये। इसी भाव का थोड़ा विस्तार करने पर देखेंगे कि किसी व्यक्ति की नौकरी छीन लेना अथवा ऐसी सामाजिक परिस्थिति कर देना, जिससे आजीविका उपार्जन कठिन हो जाये, ये सब हिंसा के अन्तर्गत आ जायेंगे।

सामान्यत: यदि हमारी लापरवाही या प्रमाद से कोई कष्ट पाये या मृत्यु को प्राप्त हो, तो उसे हिंसा नहीं मानते। यथा सड़क पर कोई व्यक्ति छटपटाता पड़ा है और हम उसे देखते हुए भी उठाकर अस्पताल ले जाने के बदले उपेक्षा करके वहीं छोड़कर चले जायें और यदि वह मर जाये, तो मृत्यु का दोष लगेगा। यदि हम एक ऐसे समाज में रहते हैं, जो हिंसा एवं मानव उत्पीड़न को प्रोत्साहित करता है और हम उसके विरुद्ध बोलते तक नहीं हैं, तो प्रकारान्तर से हम उसका अनुमोदन ही करते हैं।

उपर्युक्त व्यापक दृष्टि से विषय का अवलोकन करने पर यह समझना आसान हो जाएगा कि अहिंसा को पंच यमों में क्यों प्रमुख स्थान दिया गया है तथा सत्यादि भी अहिंसा के अंग क्यों माने गये हैं। सत्य का अर्थ है असत्य भाषण कर दूसरे को कष्ट न देना। अस्तेय अर्थात् दूसरे के सत्त्व का हरण कर उसे कष्ट न देना। परिग्रह का अर्थ है जिन वस्तुओं पर दूसरों की दृष्टि है, वह मेरे द्वारा भोगी जाये यह भाव तथा आवश्यकता से अधिक संग्रह करना। संसार में भोजन का एक भी ऐसा कौर नहीं है, जिस पर मक्खी, चीटी, चिड़ियाँ आदि की दृष्टि न हो, इतना होते हुए भी जो इनका संग्रह करता है, वह हिंसा करता है। अत: इससे विरत होना अपरिग्रह है। इसी तरह दूसरे को भोग्य न समझना एवं

भोक्तृत्व की हिंसा न करना ही ब्रह्मचर्य है। दुर्भाग्य यह है कि अनादि काल से जीवन के लिये संघर्ष में रत मानव के लिये हिंसा स्वाभाविक हो गयी है। उसे सीखना नहीं पड़ता। लेकिन अहिंसा के लिये शिक्षा आवश्यक है एवं हिंसा के त्याग द्वारा अहिंसा के संस्कारों को दृढ़ करना आवश्यक है।

अहिंसा की साधना – अहिंसा के स्वरूप की विस्तृत व्याख्या का उद्देश्य उसकी साधना के प्रकार तथा उपायों को भलिभाँति समझना है। जैसाकि कहा जा चुका है, अहिंसा के तीन स्तर हैं : पारमार्थिक, मानसिक और शारीरिक। पारमार्थिक अहिंसा लक्ष्य है एवं मानसिक और शारीरिक अहिंसा उस लक्ष्य को पाने के उपाय। इन उपायों में मानसिक अहिंसा या भाव अहिंसा शारीरिक या द्रव्य अहिंसा से अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि मन से अहिंसक अथवा शान्त हुए बिना बाह्य जीवन में हिंसा का सम्यक् त्याग सम्भव नहीं है।

भाव अहिंसा या मानसिक अहिंसा की साधना

(१) सर्वत्र आत्मदर्शन का अभ्यास – इस पारमार्थिक सत्य को बार-बार विचार द्वारा मन में बिठाने का प्रयत्न करना चाहिए तथा लौकिक व्यवहार के समय मन में इस बात का स्मरण करते रहना चाहिए कि सर्वत्र एक ही परमात्म सत्ता विद्यमान है, जो मेरी आत्मा से अभिन्न है। पारमार्थिक सत्य पर सीधे आधारित हुए भी यह साधना आसान नहीं है। अत: इससे उतरकर कुछ निम्न स्तर पर मन से हिंसा तथा हिंसा सम्बन्धित भावों को त्यागने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

(२) वैर-त्याग की साधना – मानसिक स्तर पर हिंसा वैर, घृणा इत्यादि के रूप में अभिव्यक्त होती है। वैर भी पर-पात्र के भेद से चार प्रकार का होता है। जिसके सुख में हमारा स्वार्थ नहीं रहता या जिसके सुख से हमारे स्वार्थ का व्याघात होता है, उसको सुखी देखने से, उनका चिन्तन करने से साधारण चित्त प्राय: ईर्ष्यालु होता है। उसी प्रकार शत्रु आदि को दुखी देखने से निष्ठुर हर्ष उमड़ता है। जो हमारे अनुकूल नहीं है, पर पुण्यकर्मा हैं, ऐसे व्यक्तियों की प्रतिष्ठा आदि देखने से या चिन्तन करने से मन में असूया या अमुदित भाव आते हैं और जो पुण्यकर्मा नहीं हैं, उनके प्रति (यदि स्वार्थ नहीं रहे तो) अमर्ष या क्रुद्ध तथा पिशुन भाव उठते हैं। इस प्रकार, ईर्ष्या, निष्ठुर हर्ष, अमुदिता तथा क्रुद्ध पिशुन भाव हिंसा या बैर के ही चार प्रकार हैं। इन्हें सुखी के प्रति मैत्री भाव, दुखी के प्रति करुणा, पुण्यात्मा के प्रति मुदिता या प्रसन्नता की भावना तथा अपुण्यात्माओं की उपेक्षा के द्वारा दूर करना चाहिए। इन भावनाओं को दृढ़ करनेवाली अनेक प्रार्थनायें सभी वर्गों में प्रचलित हैं तथा उनका प्रतिदिन पाठ कर इन भावनाओं को मन में दृढ़ करना मानसिक अहिंसा की साधना का अंग है। यह भाव निम्न श्लोक में सुन्दर रूप से व्यक्त हुआ है –

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोद:
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ
सदा ममात्मा विदधातु देव।।

परदोष-दर्शन, प्रतिस्पर्धा, दूसरे को पीछे ढकेल कर, आगे निकल जाने की इच्छा एवं प्रयत्न, ये भी हिंसा के ही अंग हैं। ये आज के युग में जीवन के अनिवार्य अंग बन गये हैं। अत: यह आवश्यक है कि हम यह स्वीकार करें कि ये अहिंसा के विरोधी हैं तथा इन्हें प्रोत्साहन प्रदान न करें। दूसरों के गुणों में दोष देखना असूया कहलाता है, **परगुणेषु दोषाविष्कारम्।** और अनसूया का अर्थ है –

न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यगुणानपि।
न हसेच्चान्यदोषांच सानसूया प्रकीर्तिता।।

अर्थात् दूसरे के गुणों का हनन न कर के उनकी स्तुति करना तथा दूसरे के दोषों की हँसी न उड़ाना अनसूया कहलाता है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ १६२ का शेष भाग

का आवरण दिखाई पड़े, किन्तु उसका हृदय कोमल भावों के लिए भी उन्मुक्त रहता है। विनम्रता का अर्थ आत्म-हीनता भी नहीं होनी चाहिए। मनुष्य को सदा अपनी गरिमा का भान रहना चाहिए। अपनी प्रचण्ड इच्छाशक्ति पर उसे हमेशा विश्वास होना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी विद्वत्ता और आत्मशक्ति के बल पर सम्पूर्ण विश्व में हिन्दू धर्म और वेदान्त की पताका फहरा दी थी, किन्तु अपने इस कार्य के विषय में वे कहते थे, "यदि मैंने जीवन-भर में एक भी सत्य वाक्य कहा है, तो वह उन्हीं (श्रीरामकृष्ण देव) का है, परन्तु यदि मैंने ऐसे वाक्य कहे हों, जो असत्य, भ्रामक या मानव-जाति के लिए हितकर न हों, तो वे सब मेरे ही वाक्य हैं और उनका पूरा उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है।" ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (७८)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

११-७-१९६१

प्रश्न – क्या सामाजिक सेवा-कार्य से आध्यात्मिक जीवन का गठन सम्भव है?

महाराज – जो कुछ देख रहे हो, डॉक्टर, अध्यापक, इंजीनियर, इन सबका कार्य समाज सेवा है। हमारी प्रचलित शिक्षा समाज के प्रति सेवा सिखाती है, यह मनुष्य का बाह्य पक्ष है। किन्तु मनुष्य का एक आन्तरिक पक्ष भी है। मनुष्य के पास तो देह, मन, बुद्धि भी है, क्या प्रचलित शिक्षा उसे सुसंस्कृत बनाने की बात एक बार भी कहती है?

अंग्रेजों के शासन काल में लोगों का एक मात्र सिद्धान्त था, किसी तरह शिक्षित होकर ऑफिस की नौकरी पाकर यथासम्भव धन की लूट करो। किन्तु मनुष्य को सुखपूर्वक रहने के लिये, संसार का सुख-भोग करने के लिये भी तो स्वस्थ और सबल शरीर चाहिए। संभवत: किसी को कविता, रचना, चित्रकारी आदि के रूप में मन की खुराक चाहिए, अथवा किस को बुद्धि का विकास चाहिए – किसी विषय में शोध करना उसे अच्छा लगता है। इन सभी वृत्तियों के विकास का कोई सुअवसर इस प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में नहीं है।

प्रश्न – वैराग्य क्या है?

महाराज – वैराग्य कोई आश्चर्यजनक वस्तु नहीं है। यह सारा संसार ही वैराग्य और अनुराग से चल रहा है। बड़े होने पर लड़के का माता-पिता से वैराग्य हो जाता है तथा पत्नी के उपर अनुराग हो जाता है ! यह कोई अद्‌भुत बात नहीं है, यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। जब एक के बाद किसी दूसरी चीज से अनुराग होता है, तभी मन में पिछली चीज से वैराग्य हो जाता है।

कुछ खराब देखने से ही उत्तेजित मत होना। निश्चय ही जानो, यह किसी चीज की प्रतिक्रिया स्वरूप ही हुआ है, ऐसा होगा ही, इस तरह होने का इसके पीछे कोई-न-कोई कारण अवश्य है।

रजोगुण में राक्षसी प्रकृति होती है, सत्त्वगुण में मोहिनीमूर्ति, रमणीय भावना होती है। सत्त्वगुण से बहुत सावधान रहना होता है।

प्रश्न – साधु यदि एक ही आश्रम में रह जाए, तो क्या हानि है?

महाराज – यदि वैराग्य और भक्ति रहे, तो कोई दोष नहीं है, अन्यथा एक जगह पर रहते-रहते संन्यासी में ममत्वबुद्धि आ जाती है – मेरा घर, मेरी गाड़ी। सदा-सर्वदा अनुद्विग्न रहना चाहिए। मूर्ख लोग उद्विग्न होते हैं। जो सज्जन हैं, वे प्रतीक्षा करते हैं, किसी युक्ति, कौशल से समस्या का निराकरण करना चाहते हैं। इसके अलावा, प्रकृति अपने आप प्रतिशोध लेगी।

प्रश्न – विचार करते-करते मुझमें भावुकता नहीं होती, इसके परिणामस्वरूप ध्यान भी नहीं हो पाता। क्या मुझमें भावुकता उचित है?

महाराज – भावप्रवणता नहीं रहने से ध्यान नहीं जमता, यह सत्य है, किन्तु भावुकता के द्वारा जो ध्यान होता है, वह ठीक नहीं है। मन ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहता, ऐसा बोध नहीं होने से भावुकता से मन अस्थायी रूप से ऊपर उठेगा और नीचे गिर जाएगा।

सरकार से नोटिस आई है कि विद्यालय में पाँच मिनट मौन रहना होगा। हम सभी कहते हैं, प्रार्थना। अरे ! प्रार्थना है क्या? यह तो सामी (सेमेटिक) विचारधारा है। हमारा आत्मपरक विचार है। सरकारी परिपत्र में है - पांच मिनट मौन रहें। जिन्होंने ऐसा कहा है, वे तो धर्मनिरपेक्ष (सेक्युलर) मानसिकता वाले हैं। मौन रहकर क्या करना है, यह नहीं जानते। गायत्री मन्त्र सबसे अच्छा विचार है।

थोड़ा-सा जप-ध्यान करने से ही लोकप्रदर्शन की इच्छा होती है। गिरीश बाबू ने लिखा है – यदि कोई रात भर

ध्यान करता है, तो अगले दिन उसे लगता है कि इसे कोई जान नहीं सका, तब उसे बताने की बड़ी इच्छा होती है और घूम-फिर कर बातचीत में वह थोड़ा अवश्य बतायेगा।

एक व्यक्ति ने कहा – श्रीरामकृष्ण अवतार हैं, ऐसा मैं विश्वास करता हूँ। मैं बोला – श्रीरामकृष्ण अवतार हैं क्या? अच्छा, जब वे दक्षिणेश्वर में थे, तब भगवान क्या वृन्दावन और काशी में नहीं थे? वह हाँ-नहीं करने लगा, वह असमंजस में पड़ गया। वैष्णव लोग कहते हैं कि नित्यानन्द श्रीकृष्ण को वृन्दावन में खोजकर कहीं भी नहीं पा सके, तब अन्त में नवद्वीप में आने पर दर्शन मिला। अब सब बात समझो ! ये अवतार के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं !

३१-७-१९६१

एक व्यक्ति ने किसी को अप्रिय सत्य कहा है।

महाराज – तुम वह बात क्यों कहने गए? तुम्हें यह सब कहने की क्या जरूरत थी? किसी को कष्ट देकर बात कहने से निश्चय जानो कि वह कष्ट तुम्हारे लिये तैयार है। वह अवसर मिलते ही दस वर्ष बाद भी कष्ट देने की चेष्टा करेगा। यह संसार भीषण प्रतिहिंसापरायण है।

एक बार एक व्यक्ति के लिये मैंने श्रीमाँ को पत्र लिखा था। इतना अच्छा लड़का है, किन्तु ठाकुर को स्वीकार नहीं करता, ठाकुर को रामकृष्ण, रामकृष्ण कहता है। उस पत्र के पोस्ट बाक्स में डालने के उसी दिन या उसके अगले दिन ही देखता हूँ कि वह ठाकुर-ठाकुर कह रहा है ! उस समय तो मैं माँ की लीला नहीं समझता था।

२.८.१९६१

प्रश्न – श्रीमाँ ने आपको इतना स्नेह किया है, इस समय क्या आपके मन में कोई अभाव-बोध होता है।

महाराज – कभी-कभी ऐसा लगता है कि उस समय अहंमन्यता न रखकर यदि माँ को पकड़ लेता, तो हमेशा सुख से रहता, देह-बोध को छोड़कर आराम से रहता।

देखो, परसों अचानक मन में यह बात आई। यद्यपि ये सब बातें तो भाषणों में मैंने कही है, व्याख्या की है, किन्तु इसकी धारणा हुई परसों। तब माँ से कहने से होता, अब कहने से नहीं होगा? माँ सर्वव्यापी हैं, वे सर्वदा विद्यमान हैं। 'मत्त: परतरं नान्यत्' वे पहले जैसे थीं, अवतार के समय भी वैसे ही थीं और इस समय भी वैसे ही हैं। उस समय उन के पास प्रार्थना हो सकती थी, तो क्या अभी नहीं होगी? परिवर्तन इनमें नहीं है, हम लोगों में है। अवतार होने पर बातचीत की जा सकती है, इतना ही अन्तर है, किन्तु प्रार्थना करने में कोई बाधा नहीं है।

शरीर ठीक नहीं है, इसीलिए साधन भजन कर नहीं सकता। सभी लोग कहते हैं कि अन्त में होगा। अरे अन्तकाल में तो होगा ही, वेश्या ने भी सचेतन भाव से गंगा को पा लिया था। किन्तु साधन-भजन करके जीवन्मुक्त होकर जीवन न बिताने से यथार्थ अनुभव नहीं होता। साधन-भजन क्यों करना है? माँ की कृपा तो मैंने पाई है। राखाल महाराज ने कहा था – उसे पकड़कर रखने के लिए है, ठाकुर की कृपा जिससे फिसल न जाय, जिससे यह जीवन विफल न चला जाय, – जैसे कई लोगों के जीवन में ही हुआ है और हो रहा है।

संन्यास के पश्चात् विनय महाराज के साथ मास्टर महाशय के पास गया, मैंने प्रणाम किया, उन्होंने प्रणाम स्वीकार किया। सामान्यतया वे संन्यासियों का प्रणाम स्वीकार नहीं करते थे। उन लोगों ने तो सबके ऊपर ही कृपा की है, किन्तु मैं अपने दोषों के कारण, अपनी अहंमन्यता के कारण कुछ नहीं कर सका। पता नहीं, सम्भवत: मेरे मन में लोकप्रिय होने की इच्छा रही होगी, इसीलिए मेरे पास कोई पद, प्रमाणपत्र नहीं होने पर भी इतने लोग आते हैं। महापुरुष महाराज ने मेरा भजन सुनकर कहा था – यह अनुभूतिसम्पन्न पुरुष है। कवि लोग भाव में खूब ऊपर उठ जाते हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर को देखो न ! मेरे गीतों में इस समय, 'तोमार असीमे' 'बंग हृदय' २-३ इस समय भी प्रचलित हैं – अन्य गीतों के भाव को सामान्य लोग नहीं समझते। ये गीत प्रचलित हैं, क्योंकि बड़े लोगों ने इनकी प्रशंसा की है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ १५६ का शेष भाग

तो आनुष्ठानिक बात हुई। असल बात है ईश्वर-प्राप्ति करना। क्या तुम जानते हो कि कौन सीनियर और कौन जूनियर होता है? जो ठाकुर (श्रीरामकृष्ण देव) के सान्निध्य में है, वही सीनियर है। सीनियर वह नहीं, जो बहुत दिनों से संघ में है। **(क्रमश:)**

हनुमान जयन्ती विशेष

हनुमान जी की शिक्षा

हनुमान जी का चित्र देखने से ही मन में स्फूर्ति और बल आ जाता है। उन्हें हम पवनपुत्र, बजरंगबली, अंजनीसुत आदि नामों से जानते हैं। वे श्रीराम के परम भक्त और महान शक्तिशाली थे।

उनका पराक्रम और शक्ति बचपन में ही देखने को मिलती है। बचपन में जब उन्हें भूख लगी, तब उन्होंने ऊपर देखा और सूर्य को ही फल समझकर खाने चले गए थे। देवराज इन्द्र ने उनकी ठुड्डी (हनु) पर वज्र से प्रहार किया था और वह टूट गई, इसलिए उनका नाम हनुमान हुआ।

हनुमान जी की माता का नाम अंजना और पिता का नाम केसरी था। माता अंजना अपने दुलारे पुत्र हनुमान को बहुत कथाएँ सुनाती थीं। इन कथाओं में भी जब माता उन्हें श्रीराम जी के अवतार की कथा सुनातीं, तो बालक हनुमान एकटक लगाए सुनते रहते। बार-बार रामकथा सुनने से भी वे नहीं थकते थे। रामकथा सुनने से उनका मन हमेशा राम में ही लगा रहता। बचपन से ही वे श्रीराम का नाम गाते और ध्यान करते।

बालक हनुमान तो वैसे ही सब विद्याओं में निपुण थे। उनको बचपन में ही अनेक देवताओं से वरदान प्राप्त हुए थे। किन्तु फिर भी प्रत्येक विद्यार्थी को विद्या प्राप्ति के लिए गुरु के पास जाना ही पड़ता था। प्राचीन शिक्षा में गुरु का बहुत महत्त्व था। शिष्य को भी गुरु के नाम से जाना जाता था। शिष्य विनम्रतापूर्वक गुरु की सेवा कर ज्ञान के लिए प्रार्थना करता और गुरु भी अपने स्नेहपूर्वक शिष्य को शिक्षा देते थे। माता अंजना ने भी सोचा कि उनके बेटे हनुमान की शिक्षा प्राप्त करने की आयु हो गई है। उन्होंने हनुमान का उपनयन संस्कार कराया और उनसे कहा कि वे अध्ययन करने के लिए गुरुकुल जाएँ। किन्तु हनुमान जैसे महान ज्ञानी और शक्तिशाली के गुरु कौन हो सकते हैं?

माता अंजना ने अपने बेटे से कहा कि भगवान सूर्य सभी लोकों के साक्षी और सभी शास्त्रों के ज्ञाता हैं और वे ही उन्हें शिक्षा दे सकते हैं। बालक हनुमान को लगा कि सूर्य तो इतने दूर हैं और वे वहाँ तक कैसे पहुँचेंगे। बात यह हुई थी कि बालक हनुमान बहुत शक्तिशाली और नटखट थे। उनके इस चंचल स्वभाव के कारण ऋषि-मुनि भी परेशान हो जाते थे। इसलिए एक ऋषि ने बालक हनुमान की भलाई के लिए शाप दिया कि वे अपनी शक्ति भूल जाएँगे, किन्तु जब कोई उन्हें याद कराएगा, तभी वे उस शक्ति और बल का अनुभव कर सकेंगे। बस, माता अंजना ने अपने बेटे को बताया कि वे बहुत शक्तिमान है और वे तो बचपन में ही सूर्य को फल समझकर खाने वाले थे और उनके लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं। माता ने उन्हें आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दी।

अब होना क्या था, बालक हनुमान ने एक छंलाग मारी और सूर्यदेवता के पास पहुँच गए। हनुमान ने सूर्यदेवता को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और कहा कि वे उनसे विद्या-प्राप्त करने आए हैं। सूर्यदेवता ने उन्हें कहा कि उनका रथ तो दिनरात चलता रहता है और वे उन्हें कैसे ज्ञान प्रदान कर सकेंगे? सच ही तो है, यदि सूर्यदेवता एक क्षण के लिए भी चलना बन्द कर दें, तो पूरी सृष्टि का ही विनाश हो जाएगा। किन्तु हनुमान भी कहाँ मानने वाले थे। उन्होंने सूर्यदेवता से विनयपूर्वक कहा कि वे जिस गति से चलेंगे, उस गति से वे भी उनके सामने मुख कर चलेंगे। सूर्यदेवता उनकी विद्याप्राप्ति की इच्छा देखकर प्रसन्न हुए और उन्हें विद्या प्रदान करना शुरू किया। हनुमान जी में तो पहले से ही सब विद्याएँ थीं, कुछ ही दिनों में सूर्यदेवता ने सभी वेद एवं विद्याएँ सुना दीं और हनुमान जी का भी विद्या-अध्ययन समाप्त हो गया।

गुरु के द्वारा विद्या प्राप्त करने के बाद दक्षिणा देनी होती

शेष भाग पृष्ठ १८६ पर

मूर्तिकार श्रीरामकृष्ण

स्वामी शुद्धिदानन्द
अद्वैत आश्रम, कोलकाता

(गतांक से आगे)

बचपन में यह गदाधर मिट्टी के ढेले से नई-नई मूर्तियाँ गढ़ता था। अब गुरुभाव में प्रतिष्ठित होने के बाद ये ही श्रीरामकृष्ण मनुष्य रूपी ढेले को लेकर उसके अंदर से नये नये रूपों को गढ़ने लगे। ऐसा वे कैसे करते थे? वे अपनी अति विशाल आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा करते थे।

कालीपद तो एक उदाहरण है। ऐसे कई उदाहरण गिना सकते हैं। जैसे गिरीश घोष और सुरेन्द्र मित्र, ये लोग अत्यन्त दुराचारी थे, किन्तु श्रीरामकृष्ण ने उनको भी अपने स्पर्श से भक्त, सज्जन व्यक्ति बनाया और उन्हें अच्छे मार्ग पर ले गये। ऐसा नहीं है कि सब बुरे लोग ही श्रीरामकृष्ण के पास आते थे। अच्छे लोग भी बहुत आते थे, जैसे बलराम बसु आदि। इन लोगों की भी बहुत लम्बी सूची है। उनमें एक नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह बहुत अच्छा उदाहरण है। वे हैं स्वयं नरेन्द्र ! देखिए, नरेन्द्र जब श्रीरामकृष्ण के पास आते हैं, तो उनमें भी कुछ दोष-त्रुटियाँ थीं। क्या दोष थे उनमें? ब्राह्म समाज की विचारधारा से प्रभावित होकर नरेन्द्र उस समय द्वैत को नहीं मानते थे, साकार को नहीं मानते थे, मूर्ति-पूजा को नहीं मानते थे, अवतार या गुरु को नहीं मानते थे। उनकी चिंतनधारा में ये सब दोष और त्रुटियाँ थीं। जिस दिन से वे श्रीरामकृष्ण के संस्पर्श में आये, प्रथम दो-तीन भेंट में ही श्रीरामकृष्ण के स्पर्श ने नरेन्द्र के मन में कैसे एक तूफान खड़ा कर दिया ! यह कैसे हुआ? यह श्रीरामकृष्ण की विशाल आध्यात्मिक शक्ति, विशाल आध्यात्मिक योग्यता से हुआ। जिस दिन से नरेन्द्र श्रीरामकृष्ण के संस्पर्श में आये थे, उस दिन से नरेन्द्र के अंदर से श्रीरामकृष्ण ने एक नई मूर्ति गढ़ने का काम शुरू कर दिया था। नरेन्द्र के अंदर से गढ़ी गयी मूर्ति है – युगनायक विवेकानन्द की मूर्ति – एक परिपूर्ण मूर्ति, जो सारे विश्व में हमारे सनातन धर्म की शिक्षा का प्रचार कर रही है, जगन्माता का जो विशेष कार्य है, उसको आगे ले जानेवाली मूर्ति। ऐसा हमें श्रीरामकृष्ण के जीवन में विशेष रूप से देखने को मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बचपन में मिट्टी के ढेले से देव-देवियों की मूर्तियाँ गढ़नेवाला गदाधर बड़ा होने पर श्रीरामकृष्ण के रूप में गुरुभाव में प्रतिष्ठित होने के बाद मनुष्य को गढ़ने लगा। परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द जहाँ भी गये, उनका अत्यन्त ही प्रिय विषय था – मनुष्य-निर्माण, मनुष्य-निर्माण, मनुष्य-निर्माण ! विवेकानन्द के सारे व्याख्यानों, लेखों या पत्रों को यदि आप पढ़ेंगे, तो देखेंगे कि वे हमेशा मनुष्य-निर्माण की बात करते हैं। यह मनुष्य-निर्माण विवेकानन्द की अपनी बौद्धिक सोच नहीं है, उनका अपना मूल विचार नहीं है। इसे विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण के साथ छह वर्ष रहकर दिन-रात देखा था कि कैसे श्रीरामकृष्ण अपनी अति विशाल आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा मनुष्य को गढ़ते थे, मनुष्य को बनाते थे।

श्रीरामकृष्ण के जीवन की कई ऐसी घटनाएँ हैं, उनमें से एक घटना का मैं उल्लेख करता हूँ। काशीपुर उद्यानवाटी में १ जनवरी, १८८६ का दिन है। शाम का साढ़े तीन या चार बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण पहली मंजिल से उतर कर नीचे आते हैं। नीचे भक्त लोग खड़े हैं। वे भावावस्था में सभी भक्तों को आशीर्वाद देते हैं कि 'तुम्हें चैतन्य हो' और उस भावावस्था में कई भक्तों को उनके स्पर्श का सौभाग्य मिला। उनके स्पर्श से उन लोगों के अन्दर क्या हुआ? इस घटना के द्वारा श्रीरामकृष्ण में अतिविशाल आध्यात्मिक शक्ति, अतिविशाल आध्यात्मिक योग्यता और उसकी अभिव्यक्ति बार-बार दिखायी देती है।

श्रीरामकृष्ण ने देहावसान के पहले इस शक्ति को नरेन्द्र के अंदर संचारित कर दिया। एक दिन इसी काशीपुर उद्यानवाटी में श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र को बुलाते हैं। नरेन्द्र आकर उनके पास बैठ जाते हैं। वे भावावस्था में नरेन्द्र को स्पर्श करते हैं। उसके बाद काफी देर तक नरेन्द्र भावस्थ रहते हैं। नरेन्द्र जब होश में आते हैं, तो देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण रो रहे हैं और रोकर के कह रहे हैं कि नरेन्द्र मेरे पास जितनी भी शक्ति थी, मैने सब तुम्हारे अंदर संचारित कर दी है, अब इस शक्ति के द्वारा तुम बड़े-बड़े कार्य करोगे। मनुष्य को बनाने की अतिविशाल शक्ति को श्रीरामकृष्ण ने स्वामी विवेकानन्द में संचारित किया था।

परवर्तीकाल में हम देखते हैं विवेकानन्द स्वयं जहाँ-

जहाँ जाते थे, वे मनुष्य को नये सिरे से गढ़ते जाते थे। श्रीरामकृष्ण का मनुष्य बनाने का विशेष कार्य अब स्वामी विवेकानन्द जारी रखते हैं। स्वामी विवेकानन्द में भी वही विशाल शक्ति थी, जिसका उल्लेख वे स्वयं करते हैं। इस सम्बन्ध में मुझे एक घटना याद आ रही है।

स्वामी विवेकानन्द न्यूयार्क में एक सभा को सम्बोधित कर रहे थे। जब उनका व्याख्यान चल रहा था, तभी व्याख्यान के बीच से अचानक स्वामी विवेकानन्द मंच को छोड़कर चले जाते हैं। सबको आश्चर्य होता है कि क्यों वे व्याख्यान को पूरा किये बिना मंच पर से चले गये? बाद में एक व्यक्ति ने जाकर स्वामी विवेकानन्द से पूछा, स्वामीजी आपने ऐसा क्यों किया? स्वामीजी ने कहा, मैं जब व्याख्यान दे रहा था, तो अपने सामने बैठे श्रोताओं के अन्त:करण को मैं द्रवीभूत होते देख रहा था। उन लोगों का अन्त:करण एक नरम मिट्टी के ढेले की तरह हो गया था, मैं उनको जैसा चाहे वैसा रूप दे सकता था। लेकिन मैं वैसा होने देना नहीं चाहता था। इसीलिए मैं मंच को छोड़कर चला गया।

स्वामी विवेकानन्द के अन्दर की शक्ति को देखिए, व्याख्यान मात्र से वे लोगो को बदल सकते थे, लोगों को नये सिरे से गढ़ सकते थे। जो अतिविशाल आध्यात्मिक शक्ति श्रीरामकृष्ण के अन्दर थी, वही अब स्वामी विवेकानन्द के अन्दर से काम कर रही थी। कैसे काम कर रही थी? स्पर्श के द्वारा नहीं, मात्र व्याख्यान से, उनके मुख से निकलने वाली शब्द-शक्ति के द्वारा काम कर रही थी। ऐसी आश्चर्यमय शक्ति, जो श्रीरामकृष्ण के अन्दर से अभिव्यक्त हुई, उससे विवेकानन्द के द्वारा भी मनुष्यों को गढ़ने का कार्य होता रहा है।

अब एक प्रश्न आता है, श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द आज स्थूल शरीर में नहीं हैं, तो क्या आज मनुष्य को बनाने का कार्य, मनुष्य को नये सिरे से गढ़ने का कार्य, बन्द हो गया है? ऐसा बिल्कुल नहीं है। आज भी मनुष्य को बनाने का कार्य जारी है, आज भी इस रामकृष्ण संघ के माध्यम से वह कार्य हो रहा है। जो भी व्यक्ति, चाहे वे जहाँ के भी हों, जब वे इस रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा से जुड़ जाते हैं, रामकृष्ण संघ से जुड़ जाते हैं, तो ये गारण्टी है कि उनके अन्दर आमूल परिवर्तन होना ही है। भले ही श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द आज स्थूल शरीर में नहीं हैं, लेकिन उनकी विचारधारा, उनकी भावधारा है और उस भावधारा के अन्दर वही अतिविशाल शक्ति कार्य कर रही है, जिसके द्वारा मनुष्यों को बनाने का कार्य आज भी जारी है।

एक प्रश्न और आता है कि जब कोई अवतार पुरुष आते हैं, तो क्या मात्र दस, बीस, पच्चीस, पचास, सौ मनुष्यों को गढ़ने मात्र के लिये आते हैं? अवतार का जो विशेष कार्य होता है, जो मिशन होता है, वह मात्र कुछ लोगों तक ही सीमित है क्या? ऐसा नहीं हो सकता, मात्र दस, बीस, पचास या सौ मनुष्यों को गढ़ने की बात नहीं है। यदि हम सामूहिक रूप से देखें, तो रामकृष्ण की जो अतिविशाल आध्यात्मिक शक्ति है, वह आज भी पूरे मानव समाज को एक नये सिरे से गढ़ने का कार्य कर रही है। पूरे मानव समाज को एक नया रूप देने का कार्य यही रामकृष्ण की भावधारा कर रही है। इसका उल्लेख स्वामी विवेकानन्द स्वयं करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका गये थे और अमेरिका से यूरोप आये, तो इंग्लैंड में उन्होंने एक बहुत बड़ी भविष्यवाणी की थी। यह बहुत महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणी है। अक्सर हम इसकी ओर ध्यान नहीं देते। यह शायद १८९५-९६ की बात है। वे कहते हैं – "अभी-अभी मैंने अपना कार्य प्रारम्भ किया है। अमेरिका में कुछ लहरें उठाई हैं। हमें एक विशाल लहर उठानी है। इस समाज को उलट-पुलट करके रख देना है और विश्व को नयी सभ्यता देनी है।"

अब प्रश्न उठता है कि इस विश्व को, इस मानव समाज को नयी सभ्यता देनी की क्षमता किसमें है? वह तो केवल हमारे सनातन धर्म के सार्वभौमिक सनातन विचारधारा में ही है, जिसके विग्रहस्वरूप हैं श्रीरामकृष्ण। यह बात हमें याद रखनी चाहिए। हमारा यह परम सौभाग्य है कि हम इस विचारधारा से सक्रिय रूप से जुड़े हुए हैं।

प्रस्तुत लेख का मुख्य विषय यह है कि श्रीरामकृष्ण एक उत्कृष्ट मूर्तिकार थे। वे मूर्तियों को गढ़ते थे। वे बचपन में मिट्टी के ढेले से तरह-तरह की आकृतियाँ बनाते थे। गुरुभाव में प्रतिष्ठित होने के पश्चात् यही श्रीरामकृष्ण अब मनुष्य को नये सिरे से गढ़ने का काम प्रारम्भ करते हैं। आज स्थूल शरीर में उनकी अनुपस्थिति के बावजूद, उनकी वही अतिविशाल शक्ति, पूरे मानव समाज को एक नये सिरे से गढ़ने का काम कर रही है और करती रहेगी। ○○○

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (१०)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक शृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

सृष्टि की तरंगें आती और जाती रहती हैं। इसी को माया कहते हैं – यह वह शक्ति है, जो इन समस्त अद्भुत वस्तुओं को पैदा करती है। इस माया के स्वामी [मायाधीश] को ईश्वर कहते हैं; और वह, जो माया के अधीन है वह [जीवात्मा] कहलाता है। इस जादू के प्रसंग में – जो व्यक्ति केन्द्र में खड़ा था, वह क्षमतावान हो जाने के कारण भ्रमित नहीं हुआ, परन्तु बाकी सभी दर्शकगण माया के वशीभूत हो गये। आत्मा का जो अंश माया पर शासन करता है, उसे ईश्वर कहते हैं; और उसी आत्मा के भ्रमित होनेवाले छोटे-छोटे अंश – 'तुम' और 'मैं' – 'जीवात्मा' कहलाते हैं।

भक्त कहता है कि धीरे-धीरे खिसकते हुए जादूगर के निकट जाने की चेष्टा करो और जब तुम केन्द्र में पहुँच जाओगे, तो देखोगे कि कहीं कुछ भी नहीं है। तब तुम मायाजाल से मुक्त हो जाते हो।

ज्ञानी इन सब झंझटों में नहीं पड़ना चाहता। उसका मार्ग जोखिम-भरा है। ज्ञानी भिन्न प्रकार की युक्ति दिखाता है – यदि किसी व्यक्ति का शरीर कीचड़ से ढका हो, और वह कीचड़ के द्वारा ही स्वयं को धोने का प्रयास करे, तो उसे पागल ही कहा जायेगा। अत: मायाजाल में वृद्धि क्यों करना? इसकी सीमा से बाहर निकल आओ; इसे काटकर मुक्त हो जाओ। मुक्त हो जाने के बाद तुम स्वयं को आबद्ध किये बिना ही इस खेल को जारी रख सकोगे। [दोनों के बीच] अन्तर केवल इतना है कि इस समय तुम माया के अधीन हो और मुक्त होने के बाद में तुम स्वयं उसे पकड़ोगे। वही तुम्हारे अधीन होगी।

इसलिए इस उपनिषद् के प्रारम्भिक अंशों में बताया गया है कि हमें जन्म, मृत्यु, स्वर्ग आदि की धारणाओं को त्याग देना चाहिये। यह सब बकवास है; कोई भी व्यक्ति न कभी जन्मा और न कभी मरा। ये सभी लोग सम्मोहन में पड़े हुए हैं। वैसे ही 'चिरस्थायी जीवन' आदि बाकी सब भी वैसे ही बकवास हैं। इसी प्रकार स्वर्ग तथा पृथ्वी भी मायाजाल के अन्तर्गत आते हैं।

यह वैसी बात नहीं है जैसा भौतिकवादी कहते हैं कि स्वर्ग एक अन्धविश्वास है और ईश्वर भी एक अन्धविश्वास हैं; परन्तु वह स्वयं को अन्धविश्वासी नहीं मानता। यदि एक वस्तु अन्धविश्वास है अर्थात् यदि एक कड़ी अस्तित्वहीन है, तो पूरी जंजीर ही अस्तित्वहीन होगी। पूरी जंजीर का अस्तित्व एक कड़ी के अस्तित्व पर निर्भर करता है और उस एक कड़ी का अस्तित्व पूरी जंजीर पर निर्भर करता है।

यदि स्वर्ग नहीं, तो यह संसार भी नहीं है और यदि ईश्वर नहीं है, तो कोई मनुष्य भी नहीं है। इस समय तुम सम्मोहन के अधीन हो और जब तक तुम इसके अधीन हो, तब तक तुम्हें ईश्वर, प्रकृति तथा जीवात्मा को देखना ही होगा और जब तुम इस मायाजाल के परे चले जाओगे, तो ईश्वर लुप्त हो जायेगा और उसी प्रकार प्रकृति तथा जीवात्मा भी नहीं रहेगी। अत: सर्वप्रथम हमें ईश्वर, स्वर्ग तथा कर्मफलों के भोग की धारणा का परित्याग कर देना होगा।

तृतीय मुण्डक

द्वितीय: खण्ड

इसके बाद उपनिषद् बताती है कि इस मायाजाल से बाहर कैसे निकला जाय। इस सन्दर्भ में समस्त विचारों में एक धारणा यह भी है कि उस सार्वलौकिक ब्रह्म तत्त्व के साथ एकत्व की प्राप्ति। [संसार का] यह सब कुछ बकवास है – माया है; वह परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं हैं। परन्तु वह आधार जिस पर यह सारा खेल चल रहा है – वह पृष्ठभूमि जिस पर यह सारा चित्र अंकित किया जा रहा है – [वह हम स्वयं हैं]; हम उस [परमात्मा] के साथ अभिन्न हैं। तुम जानते हो कि तुम उसके साथ अभिन्न हो, तुम्हें इसकी अनुभूति मात्र करनी है।[१]

१. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २४१-४६

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।३.२.३।।

आत्मा की प्राप्ति – खूब चर्चा करने से नहीं होती; और न तीक्ष्ण बुद्धि या शास्त्रों के अध्ययन से ही होती है। उपनिषद् स्वयं ही ऐसा कहती हैं। क्या किसी भी अन्य धर्मग्रन्थ में तुम्हें ऐसा पाठ मिल सकता है कि वेदों के अध्ययन से भी आत्मा की अनुभूति नहीं हो सकती?[२]

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्-
तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम।। ३.२.४।।

इस उपनिषद् का कहना है, 'निर्बल व्यक्ति आत्मलाभ नहीं कर सकता।' यहाँ इसका तात्पर्य – शारीरिक और मानसिक – दोनों तरह की दुर्बलताओं से है। ... यदि तन और मन में बल न हो, तो आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। कभी दुर्बल मत बनो। ... मैं जो भी शिक्षा देता हूँ, उसके लिए यही मेरी प्रथम मूलभूत शर्त है – जिस किसी वस्तु से आध्यात्मिक, मानसिक या शारीरिक दुर्बलता उत्पन्न हो, उसे पैर की ऊँगलियों से भी मत छूना। मनुष्य के भीतर जो स्वाभाविक शक्ति है, धर्म उसी की अभिव्यक्ति है। इस छोटे-से शरीर में असीम शक्ति से परिपूर्ण एक दबी हुई स्प्रिंग के रूप में विद्यमान है; और वह स्प्रिंग स्वयं ही खुलने की चेष्टा कर रही है।... तुम्हें जो कुछ भी दुर्बल बनाये, वह सत्य नहीं हो सकता।[३]

बलवान तथा दृढ़-संकल्प लोग ही योग्य साधक होने के उपयुक्त हैं। तुम्हें सबलता की जरूरत है। तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति विद्यमान है। अन्यथा तुम भला कैसे किसी परिस्थिति पर विजय पा सकोगे? परमात्मा तक तुम भला कैसे पहुँच सकोगे? दुर्बल, कमजोर और जीर्ण-शीर्ण लोगों से क्या हो सकेगा? यदि किसी योग के अभ्यास के द्वारा, शरीर तथा मन में विद्यमान अद्भुत शक्तियों का थोड़ा भी जागरण हुआ, तो वे पूरी तौर से चकनाचूर हो जायेगी। युवा, स्वस्थ तथा सबल व्यक्ति ही सफलता पा सकता है।

अत: शारीरिक बल परम आवश्यक है। स्वस्थ शरीर ही इन्द्रिय-संयम की प्रतिक्रिया को सह सकता है। अत: जो लोग भक्त होने के इच्छुक हैं, उन्हें सबल और स्वस्थ होना चाहिए।[४]

दुर्बल व्यक्ति के लिये न तो इस संसार में जगह है और न किसी अन्य लोक में। दुर्बलता दासत्व की ओर ले जाती है। दुर्बलता से ही हर तरह के शारीरिक तथा मानसिक दुख आते हैं। दुर्बलता ही मृत्यु है। हमारे आसपास करोड़ों जीवाणु फैले हुए हैं; परन्तु जब तक हमारा शरीर दुर्बल और उन्हें ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं होता, तब तक वे हमें कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। इसी प्रकार सम्भव है कि करोड़ों दुख-कष्ट-रूपी जीवाणु हमारे चारों ओर मँडरा रहे हों, परन्तु उनकी जरा भी परवाह मत करो। (क्योंकि) जब तक हमारा मन दुर्बल नहीं होगा, तब तक वे हमारे पास फटकने का साहस तक नहीं कर सकते, हमें अभिभूत करने की उनमें क्षमता ही नहीं है। यह एक बड़ा सत्य है – बल ही जीवन है और दुर्बलता ही मृत्यु। बल ही परम सुख, अनन्त जीवन तथा अमृत-स्वरूप है और दुर्बलता ही निरन्तर मानसिक तनाव तथा दुखों का कारण है, दुर्बलता ही मृत्यु है।[५]

शारीरिक बल परम आवश्यक है। सबल शरीर ही इन्द्रिय-संयम से उत्पन्न होनेवाले आघातों को सह सकेगा। अत: हमें स्वस्थ और सबल रहना होगा। यदि कोई अत्यन्त दुर्बल व्यक्ति किसी योग की साधना आरम्भ करे, तो सम्भव है कि वह किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो जाय, या फिर अपना मानसिक बल ही खो बैठे। शरीर को स्वेच्छापूर्वक दुर्बल बनाना – वस्तुत: आध्यात्मिक अनुभूति की दृष्टि से अनुकूल नहीं है।

मानसिक रूप से दुर्बल व्यक्ति आत्मा को नहीं पा सकता। हमें प्रसन्नचित्त होना चाहिये। पाश्चात्य देशों में, उसी व्यक्ति को धार्मिक मानते हैं, जो कभी मुस्कुराता नहीं, जिसके मुख पर सदैव विषाद की रेखाएँ खिंची रहती हैं, जिसका चेहरा लटका रहता है और जबड़े प्राय: बैठे होते हैं। जीर्ण-शीर्ण शरीर तथा लटके हुए चेहरेवाले लोग – योग के नहीं, अपितु वैद्य-हकीमों के हवाले किये जाने के योग्य हैं।[६] ... हताशा का भाव – अन्य चाहे जो कुछ भी हो, धर्म कदापि नहीं है। किसी भी प्रार्थना की तुलना में, सर्वदा आनन्दित तथा मुस्कुराते रहना – तुम्हें परमात्मा के निकटतर ले जाता है। **(क्रमश:)**

२. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ५, पृ. १७६

३. वही, खण्ड ४, पृ. ४१; खण्ड ९, पृ. १५५-६; खण्ड ५, पृ. १२०

४. वही, खण्ड ४, पृ. ४१-४२

५. वही, खण्ड ९, पृ. १७७

६. वही, खण्ड ४, पृ. ४२

जय हो ! जय हो ! अंगारमोती मइया

धन-धान्य प्राकृतिक सम्पदासम्पन्न शस्यश्यामला भूमि हरीतिमा की आभा से परिपूर्ण छत्तीसगढ़ प्रदेश है। वहाँ की ऐश्वर्यशाली राजधानी रायपुर है, जो अपने में बहुत-सी स्मृतियों को समेटे हुए है। रायपुर से लगभग ७० किलोमीटर दूर धमतरी है। धमतरी जिला है। वहाँ से १३ किलोमीटर दूर धमतरी का गँगरेल बाँध है। बाँध पर चढ़ने के पहले ही माँ अंगारमोती माता का मन्दिर है। माँ बहुत ही जाग्रत देवी हैं। उनके पास जाने से भक्तों को बहुत शान्ति मिलती है। भक्तवृन्द अपने मन की बातें, अपने दुख-कष्ट माँ से कहते हैं और माँ उनके दुखों को दूर करती हैं। माँ भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण कर उन्हें सुख-शान्ति प्रदान करती हैं।

१०८ शक्तिपीठ हैं और असंख्य सिद्धपीठ हैं, जहाँ आदिशक्ति जगदम्बा अपने विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होकर भक्तों का कल्याण करती हैं। उसी सिद्धपीठ कोटि में हमारी जगजननी सर्वजनअर्चिता, सकलजनवन्दिता आदिशक्तिरूपिणी अंगारमोती माता भी हैं, जो प्राचीन काल से वहाँ विद्यमान रहकर लोककल्याण कर रही हैं।

मन में यह प्रश्न उठता है कि माता का नाम अंगारमोती कैसे पड़ा? क्योंकि वहाँ माता का विग्रह अंगार जैसा तो है नहीं। जैसे ज्वलामुखी में ज्वाला देवी शक्तिपीठ है। वहाँ माँ के गर्भगृह में कई ज्वालाएँ आदिकाल से जल रही हैं। यह स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए उनका नाम वहाँ ज्वाला देवी सार्थक है।

वैसे ही शताक्षी माँ का नाम हम सुनते हैं। शताक्षी माँ के नाम की घटना तो और मार्मिक है। जीवों के दुख से कातर होकर, अपनी सन्तानों के दुख से दुखित होकर माँ जगदम्बा के शरीर में सैकड़ों आँखें निकल गईं और उन सभी आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। इसलिए उन्हें शताक्षी माँ कहते हैं। प्राणियों के दुख से दुखित होकर अश्रु प्रवाहित होने की ऐसी घटना अन्यत्र कहीं ज्ञात नहीं है।

अंगारमोती माता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये परम तपस्वी अंगिरा ऋषि की पुत्री हैं। अंगिरा ऋषि का आश्रम सिहावा में स्थित है। अंगिरातनया होने के कारण भी उन्हें अंगारमोती माता कहा जाता है।

दूसरा कारण है भक्तों के दुखों, विघ्नों, भूत-प्रेतरूपी राक्षसों और मानव के अन्त:स्थ शत्रुओं को माता अपनी प्रचण्ड अंगार-दृष्टि से जलाकर भस्म कर देती हैं। तीसरा अपने भक्तों पर कृपा-मुक्ता, कृपा के मोती बरसाती हैं, इसलिये भी अंगारमोती माता कहते हैं।

जिस प्रकार क्षीरभवानी माँ का मन्दिर भी अत्यन्त छोटा है, वे खुले आकाश में रहती हैं, ठीक वैसे ही अंगारमोती माताजी उन्मुक्त आकाश में आसन पर विराजमान हैं। उनका कोई बड़ा मन्दिर नहीं है। भक्त सीधे जाकर माँ का दर्शन करते हैं। कहते हैं कि आसपास के कई गावों की अंगारमोती माँ अधिष्ठात्री देवी हैं। उस क्षेत्र के लोग आकर माँ के पास मनौती मानते हैं और मनौती पूर्ण हो जाने पर पूजा-अर्चना करते हैं। कई बुरी आत्माएँ जब सरल सीधे ग्रामीणों को कष्ट पहुँचाती हैं, तो वे लोग श्रद्धा और विश्वासपूर्वक माता के मन्दिर में आकर उन बुरी आत्माओं से मुक्ति की प्रार्थना करते हैं और माता के क्रोध-कटाक्ष से वे दुष्ट आत्माएँ उन्हें छोड़कर चली जाती हैं और वह पीड़ित व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। दीनता, संतान-शोक, शारीरिक-मानसिक रोग और भव-पीड़ाग्रस्त लोग माता के यहाँ शरणागत होते हैं और माँ कृपाकर उन्हें दुखमुक्त करती हैं। प्राकृतिक आपदाओं से माता अपने आश्रितों की रक्षा करती हैं। भव-बाधाओं को दूर कर माता भक्तों को ज्ञान-भक्ति प्रदान कर उन्हें संसार-बन्धन से मुक्त करती हैं।

चैत्र और कुआर के नवरात्रि में अन्य देवीपीठों के समान यहाँ भी विशाल मेला लगता है। लोग ज्योति जलाते हैं। दीपावली में भी किसी दिन बड़ा मेला लगता है। काफी दुकानें हैं, जिनमें माँ को अर्पित करने के लिये फूल-मिठाई आदि उपलब्ध रहते हैं। भक्तवृन्द बड़े प्रेम से गाते हुए माँ के दर्शन के लिए जाते हैं –

जय हो ! जय हो ! अंगार मोती मइया !
धमतरिया के पास। मैया तोहरो निवास।।
तू भक्तन आस पुरैया।।
जय हो ! जय हो ! अंगारमोती मइया !

○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४०)

स्वामी भूतेशानन्द

प्रश्न – महाराज ! उस दिन 'शिव भाव से जीव सेवा' की बात हो रही थी। आपने कहा था कि तत्त्व में प्रतिष्ठित होने पर कौन किसकी सेवा करेगा? वहाँ सेव्य-सेवक, जीव-शिव नहीं रहता है, किन्तु जब तक तत्त्व में प्रतिष्ठित नहीं हो रहे हैं, तब तक सेव्य-सेवक, जीव-शिव है। किन्तु ठाकुर, स्वामीजी जब सेवा कर रहे हैं – जैसे मान लो, ठाकुर बच्चों को खिला रहे हैं, बात कर रहे हैं और कह रहे हैं, मैं इन सबको साक्षात् नारायण देखता हूँ, तो ये कैसे सम्भव हो रहा है? साक्षात् नारायण देख रहे हैं, अर्थात् तब वे तत्त्व में प्रतिष्ठित हैं, और सेवा भी कर रहे हैं, यह कैसे सम्भव है?

महाराज – ठाकुर की बात अलग है। ठाकुर ये सब दिखायेंगे, इसलिये माँ ने उनमें लोक-कल्याण हेतु थोड़ा-सा अहंकार रख दिया था। ठाकुर एक दिन मास्टर महाशय से पूछ रहे हैं, बताओ तो, मुझमें कितना अहंकार है? मास्टर महाशय सविनय कह रहे हैं – आपमें अहंकार नहीं है, यही कहना होगा। किन्तु आपने लोक-कल्याण के लिए थोड़ा-सा रख दिया है। तुरन्त ठाकुर सुधार कर कह रहे हैं, नहीं, मैंने नहीं रखा है, माँ ने रखा है। अब समझो ! इस वाणी में तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। माँ जगत्कल्याण करेंगी, इसलिये उन्होंने थोड़ा अहंकार रख दिया है, उन्होंने स्वयं नहीं रखा है। वह शुद्ध अहंकार है। उससे ही वे लोकव्यवहार कर रहे हैं, वार्तालाप कर रहे हैं, सेवा कर रहे हैं। गोपियाँ राधाजी को कह रही हैं, तुम्हें बहुत अहंकार है। राधाजी दृढ़ता से कह रही हैं – यह किसका अहंकार है? यह अहंकार उनका अर्थात् श्रीकृष्ण का है।

प्रश्न – महाराज ! कई बार साधक बहुत आगे बढ़कर भी मानो उससे आगे नहीं बढ़ पाता है। मानो कहीं रुक जाता है। ऐसा क्यों होता है?

महाराज – यह अहंकार है।

– साधक पथ पर जितना भी आगे बढ़ा, जितना भी पथ का अतिक्रमण किया, वह तो इस अहंकार से ही किया।

महाराज – वह शुद्ध अहंकार है।

– महाराज ! थोड़ा अनुभव नहीं होने से, थोड़ी झलक नहीं मिलने से, थोड़ा नहीं समझने से, केवल सुनने और विश्वास करने से क्या आगे बढ़ा जा सकता है।

महाराज – हाँ, ठीक कह रहे हो। किन्तु क्या करोगे। हम लोगों के पास जो पूँजी है, जो मूलधन है, उसे ही लेकर तो अग्रसर होना होगा। जो नहीं है, उसके बारे में सोचने से क्या होगा !

– अर्थात् कुछ देखने पर भी क्या विश्वास होगा? हमलोग सोचेंगे कि मन की कल्पना है।

महाराज – हाँ, वहाँ भी संशय होगा। भगवान ने माँ देवकी को कारागार में चतुर्भुज मूर्ति के रूप में दर्शन दिया। देवकी ने कहा – तुम इस रूप का संवरण करो। नहीं तो, कंस के प्रहरी तुम्हें देखकर मार देंगे। कृष्ण उनके सामने शिशु हैं, उनके पुत्र हैं, वे माँ हैं, इसलिये इतना वात्सल्य है। मेरे नहीं रहने पर गोपाल को कौन देखेगा? यही अहंकार है, यही ममता है।

प्रश्न – महाराज ! भक्त के द्वारा भगवान का निरन्तर स्मरण-मनन और ज्ञानी का नेति नेति, क्या दोनों एक हैं?

महाराज – एक हैं, किन्तु एक सकारात्मक है और दूसरा निषेधात्मक है। भक्त सकारात्मक दृष्टि से भगवान के चरण कमलों का आश्रय लेने का प्रयास कर रहा है और ज्ञानी 'यह नहीं, यह नहीं' (नेति नेति) करते हुए सब कुछ छोड़कर तत्त्व का अन्वेषण कर रहा है।

प्रश्न – महाराज, हम लोग जो कार्य करते हैं, उसका फल भगवान को समर्पित करते हैं। इसकी बाह्य अभिव्यक्ति हमारे जीवन में कैसे होती है?

महाराज – कर्मफल की इच्छा मत करना। बस हो गया।

– ठीक-ठीक कर्मफल समर्पण कर रहे हैं कि नहीं, कैसे समझेंगे?

महाराज – ईश्वरप्रीत्यर्थ – भगवान की प्रसन्नता हेतु कर्म कर रहे हैं। यदि उनकी प्रसन्नता हेतु कर्म करें, तो अपना स्वार्थ नहीं रहेगा। ईश्वर की प्रसन्नता के लिये कर्म कर रहे

हैं और अपनी प्रसन्नता भी खोज रहे हैं, यह नहीं होगा। यही मापदण्ड है। गीता में श्रीभगवान कहते हैं –

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।

स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तःकृत्स्नकर्मकृत्।।४/१८।।

– महाराज ! कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म का क्या दर्शन है?

महाराज – यही देखो न, हाथ-पैर समेटकर आँख बन्द कर बैठा हूँ। (महाराजजी ने दोनों हाथों को गोद में रखकर आँख बन्द करके दिखाया) मैं सोच रहा हूँ कि कुछ नहीं कर रहा हूँ। किन्तु यह भी कर्म है। मन में कितना संकल्प-विकल्प है। ज्ञानी जब कर्म करते हैं, तो वह कर्म नहीं है। क्योंकि वे जानते हैं कि वे अकर्ता हैं। उनमें कर्तापन का भाव नहीं है। इसलिए उनका कर्म नहीं है।

– महाराज ! कर्म से ही तो बन्धन है।

महाराज – हाँ, और हाथ-पैर गुटियाकर बैठे रहने में बन्धन नहीं है क्या?

– हाथ-पैर मोड़कर बैठे रहने में, कुछ नहीं करने में क्या बन्धन है?

महाराज – और अधिक बन्धन है। बन्धन का कारण अहंकार है। हाथ-पैर मोड़कर बैठे रहने में ऐसा अहंकार होगा – मैं कुछ नहीं करता हूँ, हाथ-पैर मोड़कर बिना कुछ किये रह सकता हूँ। (हँसी)

एक बार एक साधु को लगा कि कर्म करने से ही अहंकार आता है, इसलिए अब कर्म नहीं करूँगा। केवल जप-ध्यान करूँगा। उन्होंने इसी भावना से पूज्य हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) को पत्र लिखा। हरि महाराज ने उत्तर में लिखा – हाँ, तुम समझते हो कि कर्म नहीं करने से ही तुम्हारा अहंकार चला गया !

– महाराज ! गीता में है – "आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।" यहाँ कर्म का तात्पर्य क्या कर्तव्य-कर्म है?

महाराज – पूरा श्लोक बोलो।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।

आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।।३/१७।।

महाराज – हाँ, 'कर्म' का तात्पर्य कर्तव्य-कर्म है। उनका कोई कर्तव्य-कर्म नहीं है। कर्तव्य-कर्म माने विधि कर्म। यह करना होगा, वह करना होगा इत्यादि। श्रीकृष्ण कह रहे हैं न –

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।। (३/२२)

उनका कोई कर्तव्य नहीं है। कितने प्रकार की विधियाँ हैं – 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' 'सोमेन यजेत', 'इस प्रकार की ये सब विधियाँ हैं, सब लिंग, प्रत्यय हैं।

महाराज – लिंग-प्रत्यय की सभी विधियाँ क्या सकाम कर्म हैं? इसके साथ निष्काम कर्म का कोई सम्बन्ध है क्या?

महाराज – नहीं, ये सभी सकाम कर्म की विधियाँ हैं। इसे करने से यह मिलेगा, उसे करने से वह मिलेगा इत्यादि। नित्यकर्म सन्ध्या-वन्दनादि के सम्बन्ध में कहा गया है कि इन सबको करना चाहिए। इसका प्रत्यक्ष क्या फल मिलेगा, उसे नहीं कहा गया है। किन्तु कहा गया है कि अकरणे प्रत्यवाय – नहीं करने से दोष होगा। इसलिए इसे करना होगा। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १५८ का शेष भाग

(स्वामीजी द्वारा गाया गया पूर्वोद्धृत भजन – 'जिस देश में रात नहीं होती' इसी का अंश है)

गिरीश को देखते-देखते मानो श्रीरामकृष्ण के भाव का उल्लास और भी बढ़ रहा है। वे खड़े-खड़े फिर गा रहे हैं –

(भावार्थ) "मैंने अभय पद में प्राणों को सौंप दिया है,
अब मुझे यम का भला क्या भय हो सकता है?"

(वचनामृत, खण्ड २)

'वचनामृत' का यह वर्णन चित्रमय है और इसकी ऐतिहासिक वास्तविकता असाधारण है, परन्तु इन खण्ड-चित्रों से बहुधा हमें श्रीरामकृष्ण के उस आलोकमय, ज्योतिष्मान व्यक्तित्व का सही आभास नहीं मिलता, जो सारदानन्द की रचना में मिलता है। कौन-से श्रीरामकृष्ण तोड़ते और गढ़ते हैं – उन दिव्य मूर्तिकार को समझने के लिये यहाँ स्वामी सारदानन्द की नहीं, बल्कि प्रतापचन्द्र मजुमदार की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं –

"मेरे मन में अब भी वही ज्योतिर्मय परिवेश तैर रहा है। अद्भुत हैं वे मनुष्य! – वे जब जहाँ भी रहते हैं, वही आलोक-विकिरित परिवेश की सृष्टि हो जाती है। मेरी जब भी उनसे भेंट होती है, वे मेरे मन में एक ऐसा रहस्यमय और अवर्णनीय रस उड़ेल देते हैं, उस सम्मोहन से मेरा मन अभी भी मुक्त नहीं हो सका है।" **(क्रमशः)**

विविध भजन

घर-घर आनन्द छायो

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

घर-घर आनन्द छायो अयोध्या नगरी में ।
कौशल्यासुत जायो अयोध्या नगरी में ।।
नेति नेति कह महिमा गावैं,
जाको वेद पार नहिं पावैं ।
सो बेटा बनि आयो, अयोध्या नगरी में ।।
सुजस कहे को केकयी सुत को,
मनहुँ बनाई के रूप भरत को ।
प्रभु ने प्रेम पठायो अयोध्या नगरी में ।।
लखन शत्रुघन नख सिख नीके,
दुई सुत मातु सुमित्राजी के ।
सुवरन देखि लजायो, अयोध्या नगरी में ।।
विचरैं मगन मनुज तन कीन्हें,
कागभुशुण्डि संग शिवजी ने ।
डमरू आय बजाओ, अयोध्या नगरी में ।।
प्रेम भगति रस अमृत छाके,
राम जन्म उत्सव में आके ।
हनुमत हिय हरषायो, अयोध्या नगरी में ।।
प्रभु दास पाई हिय हुलसी,
जन राजेश के बाबा तुलसी ।
धरनि विमल जस गायो, अयोध्या नगरी में ।।

हे राम ! अब उन्मुक्ति पाना चाहता हूँ

डॉ. कृष्ण कुमार त्रिपाठी, राजस्थान

घुट रहा हूँ मैं निरन्तर तव विरह सन्ताप में ।
डूबता ही जा रहा हूँ, अश्रुपारावार में ।।
दीखती है अब कहाँ, मधुरिम मिलन की नव किरण,
कस्तूरिका ही खोजता फिरता रहा मम मन-हिरण ।
मरु-मरीचिका त्याग सम्प्रति सत्य पाना चाहता हूँ ।।
राम ! अब उन्मुक्ति पाना चाहता हूँ ।।
कल्पना का लघु विहग मैं, नव क्षितिज के द्वार खोलूँ ।
आदि कवि के करुण रस से मर्म व्रण को आज धो लूँ ।।
हन्त ! मेरे गीत में क्रौंची करुण क्रन्दन कहाँ?
सत्य अब लखता न शिव को, शिव भी सुन्दर को यहाँ,
सुन्दरं अथवा असुन्दर शिवम् पाना चाहता हूँ ।
राम ! अब उन्मुक्ति पाना चाहता हूँ ।।

भगवतीस्तुतिः

सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

सर्वैश्वर्यसम्पन्ना स्तूयते सर्वयोनिभिः ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।। १।।
सर्जनं पालनं चैव संहारः क्रियते यया ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।२।।
सर्वसत्त्वेषु या देवी शक्तिभूता विराजते ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।३।।
असुराक्रान्तदेवानामेका विपद्नाशिनी ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।४।।
शिवस्य शक्तिः विष्णोश्च महामायाभिधीयते ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।५।।
त्रिपुरसुन्दरी तारा मातङ्गी छिन्नमस्तका ।
काल्यादिदशधा सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।६।।
भ्रूभङ्गमनुवर्तन्ते यस्याश्च सर्वसिद्धयः ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।७।।
भुक्तिमुक्तिप्रदाने या प्राणिनां स्वामिनी मता ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।८।।
यस्या लोम्नि सहस्राणि ब्रह्माण्डानां विलासनम् ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।९।।
विश्वं पोषति सस्नेहं दीनानां तु विशेषतः ।
माता भगवती सैव नित्यं मयि प्रसीदतु ।।१० ।।

– समस्त योनि के प्राणी जिस सर्व-ऐश्वर्ययुक्त माता भगवती की स्तुति करते हैं, वे ही मुझ पर सदा प्रसन्न रहें । जो विश्व का निर्माण, रक्षण और विनाश करती हैं, जो देवी सकल भूतों में शक्ति रूप में विराजमान रहती हैं, जो असुरों से भयभीत देवताओं की एकमात्र विपत्ति-विनाशकारिणी हैं, जो शिव की शक्ति और विष्णु की महामाया कही जाती हैं, जो त्रिपुरसुन्दरी, तारा, मातंगी, छिन्नमस्ता, काली आदि दस प्रकार की महाविद्याओं के रूप धारण करती हैं, वे ही माता भगवती मुझ पर सदा प्रसन्न रहें । सारी सिद्धियाँ, जिनकी भौंहों के संकेत मात्र से अनुचालित होती हैं, प्राणियों को भोग और मोक्ष देनेवाली जो अकेली अधीश्वरी हैं, जिनके रोम-रोम में हजारों ब्रह्माण्ड सुशोभित होते रहते हैं, जो शरणागतों के योग और क्षेम का निर्वहण सदा स्वयं करती हैं, वे ही माता भगवती मुझ पर सदा प्रसन्न रहें ।

भूख न जाने धर्म की बात

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

भूख अच्छे-अच्छों को बदल देती है। भूख सहन न होने पर व्यक्ति की प्रकृति बदल जाती है। व्यक्ति पर भूख का प्रभाव अवश्य पड़ता है। भूख से शरीर में अंत:स्रावी ग्रंथियों से कुछ ऐसे रसायन निकलकर रक्त में मिल जाते हैं, जिनसे सिरदर्द अथवा पेटदर्द सामान्य बात है। जो लोग किन्हीं कारणों से बार-बार लंबे समय तक भूखे रहते हैं, उनका पेट खराब हो जाता है और आँतों की बीमारियाँ हो जाती हैं। भूखा व्यक्ति कमजोर और निष्क्रिय हो जाता है, किसी काम में उसका मन नहीं लगता। **क्षुधातुराणां न बलं न तेज:** – अर्थात् भूख से व्याकुल व्यक्ति के पास बल और तेज नहीं रहता। भूख ही है जिसके कारण व्यक्ति का शरीर ही नहीं, व्यक्तित्व भी नष्ट हो जाता है।

भगवान बुद्ध अपने शिष्यों के साथ कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक अचेत व्यक्ति दिखाई पड़ा। भगवान बुद्ध के संकेत पर एक शिष्य दौड़कर पानी लाया। उन्होंने उस व्यक्ति के मुख पर पानी के छींटे मारे और उसके होश में आने पर उसे थोड़ा पानी पिलाया। वह व्यक्ति जैसे ही थोड़ा प्रकृतिस्थ हुआ, एक शिष्य ने भगवान बुद्ध से कहा, ''भगवन्, अब आप इसे धर्म का उपदेश दें और अपने संघ में सम्मिलित करें।'' भगवान बुद्ध ने कहा, ''नहीं, यह भूखा और कमजोर है। अभी इसे उपदेश की नहीं, भोजन की आवश्यकता है। पहले इसके लिए भोजन की व्यवस्था करो।'' कहते हैं कि 'भूखे भजन न होय गोपाला' अर्थात् यदि व्यक्ति भूखा हो, तो भजन-कीर्तन, धर्म-अध्यात्म में ही नहीं, किसी भी कार्य में उसका मन नहीं लगता है। सही कहा गया है, **बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्** अर्थात् भूखे व्यक्ति को कुछ भी अच्छा नहीं लगता। एक भूखे व्यक्ति के दिमाग में रोटियाँ ही घूमती रहती हैं। नज़ीर अकबराबादी की नज्म रोटीनामा याद आ रही है:

रोटी न पेट में हो तो फिर कुछ जतन न हो,
मेले की सैर ख्वाहिशे-बागों-चमन न हो,
भूखे गरीब दिल की खुदा से लगन न हो,
सच है कहा किसी ने कि भूखे पेट भजन न हो ,
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ,

भूख व्यक्ति का दिमाग खराब कर देती है। काम के बदले वह रोटियों की खोज में भटकने लगता है। भूखा व्यक्ति भोजन को देखते ही न केवल भोजन पर टूट पड़ता है, अपितु जो उस भोजन और उसके बीच में आता है, उस पर भी टूट पड़ता है। लगातार भूख से त्रस्त व्यक्ति खराब जूठन तक खाने से नहीं हिचकता। भूख से व्याकुल व्यक्ति रुचि और स्वाद नहीं देखता – **क्षुधातुराणां न रुचिर्न पक्वम्।** 'निराला' की कविता 'भिक्षुक' की पंक्तियाँ हैं –

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

कुछ शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि भूख की अवस्था में व्यक्ति का किसी कार्य में मन नहीं लगता और उसकी सही निर्णय लेने की क्षमता, स्वयं पर नियंत्रण करने की क्षमता भी बुरी तरह से प्रभावित होती है।

स्वीडन की एक यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने भूख बढ़ानेवाले गेरलिन नामक एक ऐसे हार्मोन की खोज की है, जो हमारे सही निर्णय लेने और क्रोध-नियंत्रण की हमारी क्षमता को प्रभावित करता है। शोधकर्ताओं के अनुसार यह हार्मोन हमारे मस्तिष्क में जेनेटिक बदलाव का कारण भी बन सकता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि यदि हमें कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेना हो, तो अत्यधिक भूख की अवस्था में कभी भी कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए। कहावत है न 'पहेल पेट पूजा, फिर काम दूजा'। जीवन में भोजन का बहुत महत्त्व है, लेकिन हम कैसा भोजन करें, ये भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। हमारा भोजन तामसिक या राजसिक न होकर सात्त्विक हो, यही प्रयास करें। हमारी आजीविका भी सम्यक् होनी चाहिए। जैसा अन्न, वैसा मन और जैसा मन वैसा व्यक्ति, उसका स्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व। सही अन्न से भूख मिटा कर ही हम शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहकर उचित निर्णय लेने में सक्षम हो पाते हैं।

क्योंकि भूख से आत्मनियन्त्रण के अभाव और क्रोधावस्था में गलत निर्णय, गलत कार्य हो सकता है, इसलिए सावधान रहें। पूरे विश्व में अनेक स्थानों पर बहुत से लोग भुखमरी व कुपोषण से ग्रस्त हैं। हमारे देश में भी कई लोग आज भी भुखमरी और कुपोषण के शिकार हैं। कभी-कभी देखने में आता है कि जो लोग बचपन में भुखमरी और कुपोषण के

शिकार रहे हैं, यदि बाद में उन्हें कुछ कार्य करने, सीखने या पढ़ने-लिखने का सुयोग भी मिला, तो वे अधिक उन्नति नहीं कर सके। क्योंकि लगातार भूख के कारण उनके मस्तिष्क में जेनेटिक बदलाव हो जाते हैं और वे सामान्य स्थिति में नहीं आ पाते।

भूखा व्यक्ति किसी एक विचार या बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता, अत: असंतुलित होकर गलत निर्णय ले लेता है। गलत निर्णय से गलत कार्य होना स्वाभाविक है। कुछ दिन पहले एक समाचार पढ़ा था। अमेरीका में एक महिला ने उसके हिस्से का खाना खाने के कारण अपने पुत्र की हत्या कर दी। महिला शाम को जब काम से घर लौटी, तो देखा कि उसका रखा हुआ खाना गायब है। जब उसे पता चला कि उसके बेटे ने उसका खाना खा लिया है, तो उसने चाकू मारकर अपने ही पुत्र के प्राण ले लिये। शायद भूख अथवा आत्मनियंत्रण के अभाव के कारण ही उसकी सही निर्णय लेने की क्षमता जाती रही और यह कुकृत्य कर डाली। हितोपदेश में कहा गया है कि **बुभुक्षित: किन्न करोति पापम्** अर्थात भूखा व्यक्ति क्या-क्या पाप नहीं कर डालता?

भूख लगने पर हम जो भी भोजन लेते हैं, उससे हमारे शरीर रूपी मशीन को चलाने के लिये ऊर्जा रूपी ईंधन की प्राप्ति होती है। इसी ऊर्जा से शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग स्वस्थ रहते हैं और सुचारु रूप से कार्य करते हैं। जब शरीर को पूरी ऊर्जा मिलती है, तभी हमारा मस्तिष्क भी सही ढंग से कार्य कर पाता है और हमारी सोच भी संतुलित व सकारात्मक बनी रहती है तथा विवेक जाग्रत रहता है, अन्यथा नहीं। मस्तिष्क के सही ढंग से कार्य न कर पाने की स्थिति में हम सही निर्णय कैसे ले सकते हैं? कई बार न तो सही निर्णय ही लिया जा सकता है और न कोई कार्य ही किया जा सकता है। भूख दुख भी है और रोग भी है। तभी कहा गया है कि **नास्ति क्षुधासमं दु:खं नास्ति रोग: क्षुधासम:** अर्थात् भूख के समान कोई दुख नहीं और भूख के समान कोई रोग नहीं। ये भी कहा गया है कि **नास्त्याहारसमं सौख्यम्** अर्थात् भोजन के बराबर कोई सुख नहीं। नज़ीर की नज़्म रोटीनामा की पँक्तियाँ हैं –

जब आदमी के पेट में आती हैं रोटियाँ, ...
जितने मज़े हैं सब ये दिखाती हैं रोटियाँ।

कभी भी व्यक्ति की भूख की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। एक बार एक लड़की बोर्ड की परीक्षा दे रही थी। उससे कुछ भी नहीं लिखा जा रहा था। कुछ देर तक तो वह प्रश्नपत्र उलटती-पलटती रही और फिर अचानक बेहोश होकर गिर पड़ी। वास्तव में उसने परीक्षा की सही तैयारी ही नहीं की थी। ऊपर से उपवास किया हुआ था। तैयारी की कमी और भूख ने मिलकर उसका सारा काम बिगाड़ दिया। एक बार एक व्यक्ति से पूछा गया कि दो और दो कितने होते हैं । उसने चार की बजाय चार रोटी कहा, क्योंकि उसका पूरा ध्यान रोटियों पर केन्द्रित था। भूख के कारण उसके मस्तिष्क में जो परिवर्तन हुआ, उससे उसकी सही सोचने व सही प्रतिक्रिया करने की क्षमता जाती रही।

वास्तव में यह दो-चार लोगों की समस्या नहीं है, यह पूरे विश्व की समस्या है। आजीविका के अभाव में लोग भूख से पीड़ित हैं। भूखा व्यक्ति कुछ भी खाने लगता है –

भूख न जाने बासी भात।
नींद न जाने टूटी खाट।।

ये भूख ही है, जो चोरी, डकैती व अन्य दूसरे अपराधों की जननी है, क्योंकि भूख की अवस्था में व्यक्ति करणीय-अकरणीय में भेद नहीं कर पाता और श्रेय मार्ग को त्यागकर प्रेय, सरल लुभावने रास्ते पर चलने लगता है। वह आसान आकर्षक मार्ग कब अपराध व अनैतिकता का रूप ले लेता है, पता भी नहीं चलता। उसको रोकने और सही तरीके से लोगों की भूख मिटाने के लिये ही सदनों में लम्बी-लम्बी बहसें होती हैं, लेकिन भूख है कि खत्म होने का नाम नहीं लेती। न बहस करने की भूख खत्म होती है और न रोटी की ही।

भूख भी कई प्रकार की होती है। कई लोग जठराग्नि शान्त करने के लिए और कई शारीरिक, मानसिक भूख मिटाने के लिये गलत कदम उठाने को विवश हो जाते हैं। कई बार किसी की धन-सम्पत्ति, प्रसिद्धि की भूख भी बड़ी हानिकर होती है। धन-ख्याति पाने के लिए लोग किस सीमा तक गिर जाते हैं, इसे हम प्रतिदिन देखते-सुनते रहते हैं। इसके मूल में उपस्थित है नैतिक मूल्यों का पतन। नैतिक मूल्यों के अभाव में ही समाज अराजक और उच्छृंखल हो जाता है। स्वस्थ समाज के विकास के लिए हर प्रकार की भूख का उचित उपचार अनिवार्य है। समाज में सबके लिये सही आजीविका की व्यवस्था कर, सबको सही शिक्षा और संस्कार देकर हम स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं। ○○○

व्यावहारिक जीवन में सजग रहें

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

जो अशुभ काम करता है, उसे उन कर्मों का फल भुगतना पड़ता है। श्रीरामकृष्ण-भाव के आश्रित होने से व्यक्ति में सुधार होता है। श्रीरामकृष्ण-भाव हमें चाबुक लेकर सुधारता है। जीवन में कितना भी लोभ आये, लेकिन हम उससे कभी विचलित नहीं होंगे। हमारे जीवन का रिंगमास्टर हमारा मन्त्र ही है। गुरुमन्त्र हमारा सबसे बड़ा आश्रय है। हमारे हृदय में भगवान विराजमान हैं। वे चेतावनी देते हैं, वे बोलते हैं कि ऐसा करो, वैसा मत करो। लेकिन हम उनकी ओर ध्यान नहीं देते। हमें रोज अपने मन को, अपने कर्म को देखना चाहिए कि आज हमने क्या किया? अपने सम्पूर्ण चरित्र का मूल्यांकन करना चाहिए। यदि कोई गलती हुई है, तो मन में पश्चात्ताप करना चाहिये और अपने इष्ट से प्रार्थना करके क्षमा माँगनी चाहिए।

हमें मन को यह समझा देना है कि हमारा जीवन आध्यात्मिक ही होगा और हमें उसके नियमों का पालन करना है। श्रीमाँ सारदादेवी ने कृपा कर हमें कितनी छूट दी है। माँ बोलती हैं, अब तक जो हो गया, सो हो गया। अब ऐसा नहीं करना। आगे का जीवन अच्छा बिताना। श्रीमाँ यह भी कहती हैं कि किसी के दोष मत देखो। सबको अपना बनाना सीखो। कोई पराया नहीं है। श्रीमाँ के इन उपदेशों को हमें सदा याद रखना चाहिये। ऐसी विडम्बना है कि किसी में सौ गुण हों, तो उधर हमलोगों का ध्यान नहीं जाता, किन्तु उसमें यदि एक दोष हो, तो हमारा मन उसे ही देखता रहता है। अरे भाई ! गुण और दोष सबमें रहते हैं, इसलिये दोष को छोड़कर गुण को ही देखना चाहिये। सबकी सहायता करनी चाहिये। दूसरों को आवश्यक वस्तुएँ दान करनी चाहिये, सत्पात्र को योग्य वस्तुएँ दान देनी चाहिये। बिना माँगे, बिना किसी प्रत्युपकार के, बिना किसी बदले की इच्छा से जब हम किसी की सहायता करते हैं, तो वह शुद्ध पवित्र दान होता है। इसके अतिरिक्त जीवन के नैतिक मूल्यों में सबसे पहला स्थान सच्चाई का है। हमें व्यवहार में सच्चाई रखनी चाहिए। कभी भी जीवन में लोभ न करें। जीवन-निर्वाह के लिये धन की आवश्यकता होती है। किन्तु कभी अनैतिकता से धन नहीं कमाएँ। नैतिकता से अर्जित धन से हमारा चरित्र अच्छा बनेगा और परिवार और समाज को नैतिक बनने की प्रेरणा भी मिलती है। परिवार में सामंजस्य और समरसता बनाने के लिये अपने अहंकार और अपने स्वार्थ का त्याग करना चाहिये।

हमारा सम्पूर्ण जीवन अभ्यास और आदत से बनता है। इससे ही अच्छे संस्कार बनते हैं, जो जीवन के निर्माण में परम सहायक होते हैं। हम अपने जीवन के भूतकाल के बारे में कुछ नहीं जानते, न अपने भविष्य के बारे में कुछ जानते हैं। केवल वर्तमान ही है, जिसमें हम अच्छे कर्म करके अपने जीवन को सुन्दर बना सकते हैं। अशुभ चिन्तन न करें। अशुभ विचार हमारे मन को फँसाकर शुभ चिन्तन और शुभ कर्म से वंचित कर देते हैं। इसलिए हमेशा शुभ चिन्तन करें। सदा मन में उठ रहे विचारों के प्रति सजग रहें। जब हम जागे, तभी सबेरा। जीवन में हम जो व्यवहार करते हैं, उसका प्रभाव वस्तुओं और हमारे सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों पर पड़ता है। इसलिए व्यावहारिक जीवन में सावधान रहें। विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बनाना सीखें। असुविधाओं को भी सुविधाओं में परिवर्तित करने की कला सीखें।

स्वास्थ्य के प्रति सजग रहें। स्वास्थ्य ठीक रहने से ही साधन-भजन ठीक होता है। स्वाद के लोभ में यदि भोजन अधिक करेंगे, तो बीमार पड़ेंगे और बीमार तन से कभी कोई भी साधना नहीं हो सकती है। साधना के लिये जीवन में कई अच्छी आदतें डालनी पड़ती हैं। अत: आदतें डालें।

प्रभु का प्रकाश जब हमारे जीवन में होगा, उसी दिन हमारे मन में जागृति आयेगी। नाम-साधना मन का बहुत बड़ा चौकीदार है। शरीर अस्वस्थ होने पर भी मन को अस्वस्थ नहीं होने दें, मन को दुर्बल न होने दें। बिगड़ा मन भी सुधर जाता है, उसके लिये सत्संग और महापुरुष की कृपा चाहिए। हमारे आध्यात्मिक जीवन का मुख्य भाग है जप और ध्यान। एकाग्रता से भगवान का नाम लेने से ध्यान होता है। भगवान के शरणागत होने और उनका नाम लेने से भव-दुखों का नाश हो जाता है। ○○○

ईशावास्योपनिषद (१६)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

हमने पहले कहा था - पता ही नहीं चलता है कि यहाँ पर गुरु और शिष्य का वार्तालाप हो रहा है। पर इन मन्त्रों से पता चलता है, जब गुरुजी कहते हैं कि 'इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे' – हमने उन धीर पुरुषों से यह बात सुनी, उन्होंने हमारे प्रति यह बात कही और वही हम तुमसे कह रहे हैं, तब मालूम पड़ता है कि अरे, यहाँ पर तो गुरु बैठे हैं और वे शिष्य से कुछ कह रहे हैं। यहाँ पर गुरु और शिष्य के बीच में वार्तालाप हो रहा है। अब उपदेश तो समाप्त हो गया। गुरु ने कहा कि बेटे! मुझको जो कुछ कहना था, मैंने सब कुछ तुम्हें अत्यन्त सूत्र रूप में बता दिया। कर्म और ज्ञान इन दोनों को साथ में समन्वित करके चलना है। देख! अलग-अलग नहीं, झगड़ा करके नहीं, दोनों में कर्म की आवश्यकता है, ज्ञान की आवश्यकता है। दोनों एक-दूसरे के परिपूरक बनकर के चलें। व्यक्तिगत साधना और सामाजिक साधना, ये दोनों साधनाएँ एक-दूसरे की परिपूरक हैं। केवल व्यक्तिगत कोई साधना करे, वह भी उतना स्पृहणीय नहीं है। इन दोनों को साथ लेकर के चले, व्यक्तिगत साधना भी मेरी चलती रहे और समाज-साधना भी मेरी चलती रहे, ये दोनों के दोनों परस्पर परिपूरक हैं। ऐसा बता दिया। साधना का क्रम बता दिया। आत्मतत्त्व क्या है, उसका स्वरूप बता दिया।

अब वह शिष्य चिन्तन करता है, वह शिष्य एकान्त में साधना करता है और साधना करते हुए कहता है –

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।१५।।

इसका अर्थ है, हिरण्यमय पात्र से, हिरण्यमय माने सुनहरा, सोने का, तो सुनहरे चमकीले ढक्कन से सत्य का मुँह छिपा हुआ है, ढँका हुआ है। हे पूषन्! तुम क्या करो? उस ढक्कन को हटा दो। किसके लिए हटा दो? सत्यधर्माय दृष्टये – मैं सत्यधर्मा हूँ, मेरी निष्ठा सत्य में है, मैं उस ब्रह्मतत्त्व को देखना चाहता हूँ, इसलिए तुम इस आवरण को हटा दो।

अब यहाँ पूषन् का संकेत है। वैसे सूर्य को भी पूषन् कहा जाता है, जिसका अर्थ है पोषण करनेवाला। परन्तु यहाँ इसका दूसरा अर्थ वह ब्रह्म है, वह ब्रह्म ज्योति है, वह चैतन्यस्वरूप है, जिसकी वह साधना कर रहा है। वह क्या देखता है? वह साधना करते-करते देखता है कि यह जो सत्य है, उसका मुख ढँका हुआ है। किससे? चमकीले पात्र से, चमकीले ढक्कन से ढँका हुआ है। यह एक रूपक है। वह ब्रह्म को जानना चाहता है, अपने स्वरूप को देखना चाहता है, पर देखता है कि यह संसार चमकीला है, अत्यन्त लोभनीय है, यह सोने के समान लोभनीय, उससे मानों वह सत्य ढँका हुआ है। तो क्या करता है? वह साधना तो करता है, पर उसकी साधना में जो आकुलता है, उस क्षण का वर्णन इस मन्त्र में है। वह कहता है - हे पूषन्! मैं सत्यधर्मा हूँ, मैं सत्य में निष्ठित हूँ, मैं सत्य को ही पाना चाहता हूँ, पर सत्य पर यह सुनहला पर्दा है। सत्य पर यह सुनहला ढक्कन पड़ा हुआ है। तुम कृपा करो। इस ढक्कन को हटा दो, ताकि मैं सत्य स्वरूप को देख सकूँ, सत्य स्वरूप की अनुभूति कर सकूँ। यह तत्त्व, जिसको हमने भक्ति का तत्त्व कहा है, यह आकुलता है। व्यक्ति आकुल होकर के ईश्वर से प्रार्थना करे, उस सत्य स्वरूप से प्रार्थना करे, तो यह भी साधना का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसको हम विकलता कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव जब ईश्वर की बातें करते, तो उनसे भक्त लोग पूछते – "महाराज! क्या हमें भी ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं?" श्रीरामकृष्ण कहते – "क्यों नहीं हो सकते हैं!" तब भक्त लोग पूछते थे – "हमें दर्शन कैसे हो सकते हैं? किस प्रकार से हो सकते हैं?" श्रीरामकृष्ण देव कहते – "क्या तुमलोग ईश्वर को चाहते हो? यदि सचमुच ईश्वर को चाहते हो, तो तुम्हें ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं, पर कहाँ, कौन ईश्वर को चाहता है रे? सब कोई तो ईश्वर से चाहते हैं। ईश्वर को भला कौन चाहता है?" कैसी विलक्षण बात

है! हम ईश्वर से चाहते हैं, ईश्वर को तो नहीं चाहते। ईश्वर से नाम, सम्पदा चाहते हैं, धन चाहते हैं, हम उनसे प्रतिष्ठा चाहते हैं, पद चाहते हैं, सम्पत्ति चाहते हैं, पर कौन ईश्वर को चाहता है? वे कहते, "देख, यदि तू ईश्वर को चाहता है, तो ईश्वर मिलेंगे। व्याकुल होकर पुकार तो सही!" कभी-कभी वे कहते – "मैं दावे से कहता हूँ रे, तीन दिन और तीन रात कोई ईश्वर को पुकार सके, ईश्वर के लिए रो सके, तो ईश्वर सामने आकर के खड़े हो जाते हैं।" कैसी विलक्षण बात है! केवल तीन दिन और तीन रात की बात कह रहे हैं। हमारे जीवन में कितने वर्ष बीत जाते हैं? एक वर्ष में ३६५ दिन, ३६५ रातें होती हैं। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि यदि कोई तीन दिन और तीन रात भगवान के लिए रो सके, तो भगवान उसके सामने आकर खड़े हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि तीन दिन और तीन रात रोना सहज है। पर क्या सहज है? हाँ! संसारी वस्तुओं के लिए रोना सहज है। यदि हमारा कोई प्रियजन काल-कवलित हो जाये, तो महीनों हमारी आँखों के आँसू नहीं सूखते। यदि धन नष्ट हो जाये, तो हम वर्षों बिसूरते रहते हैं, पर कभी हमारी आँखों में यह सोचकर आँसू आता है कि प्रभु तुमने दर्शन नहीं दिये! प्रभु तुमको मैं देख नहीं पाया और मेरा जीवन विफल हो रहा है! क्या जीवन में ऐसी व्याकुलता आती है? जिसके जीवन में आती है, उसको दर्शन मिलता है।

इस पन्द्रहवें मन्त्र में उस आकुलता का, उस भक्ति का तत्त्व दृष्टिगोचर हो रहा है। मानो वह आकुल होकर के प्रार्थना करता है – मैं सत्य कहता हूँ, मैं सत्यधर्मा हूँ, मुझे सत्य ही चाहिए। मैं दूसरा कुछ नहीं चाहता। मैं दुनिया की यह चमक-दमक नहीं चाहता। मैं इसे पसन्द नहीं करता और इसके प्रति मेरा कोई आकर्षण नहीं है। मैं तो सत्य के प्रति निष्ठित हूँ। हे पूषन्! हे सूर्य! हे ब्रह्मज्योति! हे चित्तस्वरूप! यह जो तुम पर सुनहला ढक्कन पड़ा है, कृपा करके इसे हटा लो। नहीं तो मेरे बूते की बात नहीं है कि इसको मैं हटा सकूँ।

श्रीरामकृष्ण का दूसरा उदाहरण है – पुलिसमैन अंधेरे में मेरे चेहरे को देख लेता है, उसके पास चोर-लालटेन है। वह मेरे ऊपर प्रकाश फेंककर मुझे देखता है। मैं तो उसे देख नहीं पाता, पर यदि मैं पुलिसमैन को देखना चाहता हूँ, तो मैं क्या कहूँगा? कहूँगा – भाई! जो रोशनी तुम मुझ पर फेंक रहे हो, कृपा करके वह अपने मुख पर तो फेंको, जिससे मैं तुम्हें देख सकूँ कि तुम कौन हो? यदि मेरा अनुरोध मानकर वह चोर-लालटेन की रोशनी अपने मुख पर फेंकता है, तो मैं उसे देखने में समर्थ होता हूँ। वह अनुरोध और कृपा का पक्ष है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १५४ का शेष भाग

आ जाती है और वह उससे कुछ सान्त्वना के शब्द कहती है। प्रभाव यह होता है कि वह रोती हुई स्त्री उठ बैठती है, उसका दुख दूर हो जाता है और वह मुस्कराने भी लगती है। देखो तो, शब्दों में कितनी शक्ति है ! उच्च दर्शन में जिस प्रकार शब्द-शक्ति का परिचय मिलता है, उसी प्रकार साधारण जीवन में भी। इस शक्ति के सम्बन्ध में विशेष विचार और अनुसन्धान न करते हुए ही हम रात-दिन इस शक्ति का उपयोग कर रहे हैं। इस शक्ति के स्वरूप को जानना तथा इसका उत्तम रूप से उपयोग करना भी कर्मयोग का अंग है।[६] आइए हम सब अपने जीवन और वाणी को इतना संयत करें कि हमारी वाणी में सरस्वती का वास हो जाये और हमारा प्रत्येक शब्द मंत्र की भाँति कार्य करे।

उपरोक्त वाणी सम्बन्धी बातों के साथ-ही-साथ हमारा जीवन भी उसी ढंग से ढला हुआ होना चाहिए। क्योंकि जब व्यक्ति का जीवन उच्च आदर्शों पर प्रतिष्ठित होता है, तब उसकी वाणी स्वाभाविक रूप से उसके हृदय से निकलती है। जब उसकी वाणी उसके जीवन के दर्पण की तरह मिलती है, तभी उसका दूसरों पर गहरा प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति स्वयं भी शान्ति पाता है। परन्तु जीवन वैसा न होने पर उसकी वाणी ओछी लगती है। ○○○

सन्दर्भ -

१. युगनायक विवेकानन्द, खण्ड-१/३१७ **२.** माँ की बातें, १७९ **३.** श्रीमद्भागवत ४/३/१९ **४.** श्रीश्रीरामकृष्णकथामृत, १/६२१ (५ अक्टूबर १८८४) (बांग्ला), **५.** श्रीमद्भगवद्गीता, १७/१५ **६.** विवेकानन्द साहित्य, ३/४९

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (३२)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

भक्तियोग – भक्ति के द्वारा परमात्मा से मिलन करना भक्तियोग है। यह मार्ग प्रेम का मार्ग है, शरणागति का मार्ग है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''भक्तियोग स्वाभाविक, मधुर और सहज है। ज्ञानयोग की तरह ऊपर चढ़ता नहीं है, इसलिए उसमें अधोपतन का भय भी नहीं है।'' श्रीरामकृष्ण देव इस मार्ग को बिल्ली के बच्चे का मार्ग कहते हैं। बिल्ली का बच्चा सम्पूर्ण रूप से अपनी माँ पर निर्भर रहता है। उसे उसकी माँ मुँह में पकड़कर घुमाती रहती है। माँ की पकड़ मजबूत होती है, इसलिये उसे गिरने का भय नहीं होता है। यह मार्ग सबसे अधिक सुरक्षित है। क्योंकि भगवान से प्रेम करने से फिर नीचे गिरने की सम्भावना ही नहीं रहती है। इसके लिये श्रेष्ठ उदाहरण गोपियों का है। श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट प्रेम के परिणाम से वैसा ध्यान हो जाता है। योगी वर्षों की तपश्चर्या से परमात्मा के साथ जो तद्रूप होते हैं, वैसी तद्रूपता गोपियों को सहजता से हो गई थी।

निष्ठापूर्वक भक्ति करने से कितना भी पापी क्यों न हो, वह शान्ति को प्राप्त कर सकता है, यह बात श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में बताई है –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।९.३०।।

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है, तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।९.३१।।

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।

कर्मयोग – किसी भी प्रकार के फल की आशा के बिना निष्काम भाव से कर्म करना, परमात्मा को अर्पित करके करना, यह है कर्मयोग। निष्काम भाव से कर्म करते-करते मनुष्य का अहंकार बहुत तेजी से नष्ट हो जाता है। दूसरों की सेवा करते-करते चित्त की शुद्धि हो जाती है, मन शान्त हो जाता है। इस कर्मयोग के द्वारा मनुष्य ईश्वर के निकट तेजी से पहुँच सकता है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, ''जो दूसरों के दुख दूर करने का काम करता है, उसके अपने दुख अपने आप दूर हो जाते हैं। जो दूसरों को प्रसन्न करते हैं, उन्हें प्रसन्नता अपने आप मिलती है। साथ ही दूसरों की सेवा करते हुए, उनके दुखों को देखकर संसार की असारता का अनुभव होता है और दुखमय संसार के प्रति अनासक्ति होने लगती है।'' इन दुखों से मुक्त करनेवाली एक शक्ति हैं भगवान, उसकी प्रतीति बार-बार होती है। इससे ईश्वर के प्रति श्रद्धा दृढ़ होती है और इस प्रकार सेवा-साधना के द्वारा भी साक्षात्कार का मार्ग शीघ्र प्रशस्त होता है। गीता में कर्मफल के त्याग की महिमा समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं, 'अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यान से कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है। त्याग से शीघ्र शान्ति प्राप्ति होती है।''

इनमें से किसी भी एक मार्ग के द्वारा आत्मदर्शन हो सकता है। परन्तु आधुनिक मानव के लिये कोई एक मार्ग का अनुसरण करने से भय या कुछ हानियाँ भी हो सकती हैं। इसलिये चारों योगों का समन्वय करके साधना करने से सभी आशंकाओं और हानियों से बच सकते हैं। एक साथ मनुष्य के भी साधनों – मन, बुद्धि, हृदय और शरीर का संतुलित और शीघ्र विकास होता है, उसे शीघ्र परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। इससे वह शीघ्र शाश्वत शान्ति भी प्राप्त कर सकता है।

मा शुचः – परमात्मा की प्राप्ति के लिये बताए गये इन चारों योगों की साधना पद्धति द्वारा ही अन्तर्निहित परमात्मा को आवृत करनेवाले अज्ञान के पर्दे हटा सकते हैं। परन्तु उसमें प्रत्येक साधना पद्धति का दृढ़ता से पालन करना पड़ता है, इसमें शिथिलता नहीं चल सकती। परन्तु यदि कोई दृढ़ता से इस साधना पद्धति का आचरण न कर सके, तो क्या वह शान्ति नहीं प्राप्त कर सकेगा? तब तो शान्ति-प्राप्ति की लालसा कभी भी पूर्ण नहीं होगी? क्या उसे शान्ति की खोज में जन्म-जन्मान्तर तक भटकते रहना

ही पड़ेगा।

नहीं, ऐसा नहीं है। योग की कठिन तपश्चर्या और नियमों का पालन नहीं कर सकनेवाले के लिए भी भगवान की शाश्वत शान्ति के द्वार खुले ही हैं। शान्ति के लिए तड़पते मनुष्य को भगवान ने अभय वरदान दिया है कि भले ही तुझे किसी प्रकार की योग साधना नहीं आती हो, भले तुमने व्रत, जप-तप, उपवास न किये हों, भले ही तुमने कभी मेरी पूजा-उपासना नहीं की हो, तो भी क्या हुआ। तुम चिन्ता मत करो। मैं हूँ न ! तुम मेरे पास चले आओ। तुम्हें जो शान्ति चाहिए, जो आनन्द चाहिए, मैं तुम्हें दूँगा। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से सर्वसाधारण को यह अभय वचन दिया है। उन्होंने सबके लिये शरणागति का सरलतम मार्ग बता दिया है। वे भगवद्गीता में कहते हैं –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।

१८.६१-६२

"हे अर्जुन ! शरीर रूपी यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है । हे भारत ! तुम सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जाओ। उस परमात्मा की कृपा से ही तुम परम शान्ति तथा सनातन परम धाम को प्राप्त होगे।"

अनन्य भाव से भगवान की शरण में जाने के बाद कोई भी चिंता नहीं रहती है। वे तो भक्तवत्सल कृपासागर हैं, शान्ति के अक्षय धाम हैं। उनके समीप जाने से संसार के विविध तापों का शमन हो जाता है। मन की चंचलता शान्त हो जाती है। उनके कृपा-कटाक्ष मात्र से आसक्ति के सभी बन्धन छूट जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वमुख से अभय वरदान दिया है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। १८.६६।।

"सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तुम केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो।"

इस प्रकार भगवान स्वयं आह्वान कर रहे हैं, अभय दे रहे हैं। उनकी शरण में आने को कह रहे हैं और वरदान दे रहे हैं कि तू दुखी क्यों हो रहा है, मैं तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूँगा। केवल तू मेरे पास आ जा।

जब भगवान स्वयं हमें इस तरह अपने पास बुला रहे हैं, तो चलो हम भगवान की शरण में जाकर उनके परम आनन्द और शाश्वत शान्ति के भागीदार बनें।

महापुरुषों के कुछ उपदेश और प्रार्थनाएँ

"पानी के अन्दर नाव रहे, तो कोई बात नहीं, लेकिन नाव के अन्दर पानी नहीं भरने देना चाहिए, नहीं तो नाव डूब जाएगी। उसी प्रकार साधक संसार में रहे, तो उससे कोई आपत्ति नहीं, पर साधक के मन में संसार का लेप नहीं लगना चाहिए।

"गीता पढ़ने से ज्ञान होता है। वही बार-बार गीता शब्द बोलने से जो होता है, जैसे 'गी तागी तागी (त्यागी, त्यागी)' अर्थात् हे जीव ! तू सब कुछ त्यागकर भगवान के चरण-कमलों का आश्रय लो।"

"पहले प्रभु को प्राप्त करो, फिर धन को प्राप्त करो। लेकिन इससे विपरीत मत करना। आध्यात्मिकता प्राप्त करने के बाद तुम संसारी जीवन जीओगे, तो मन की शान्ति कभी नहीं खोओगे।" – श्रीरामकृष्ण परमहंस

"विपत्तियाँ तो आती हैं, परन्तु वे जीवनभर बैठी नहीं रहती हैं। तुम देखोगे कि वे सब पुल के नीचे के पानी के समान बहती चली जाएँगी।" – श्रीमाँ सारदादेवी

"सफलता प्राप्त करने के लिये कठिन परिश्रम करो और दृढ़ इच्छा रखो। तुम अपने लक्ष्य को पाने में निश्चित सफल होगे।" – स्वामी विवेकानन्द

(समाप्त)

पृष्ठ १७१ का शेष भाग

है। सूर्यदेवता को तो किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं थी। किन्तु जब बालक हनुमान ने उनसे गुरुदक्षिणा के लिए पूछा, तो सूर्यदेवता ने कहा कि उनके ही अंश से सुग्रीव का जन्म हुआ है, इसलिए यदि वे सुग्रीव की रक्षा करने का वचन देते हैं, तो उन्हें बहुत प्रसन्नता होगी। हनुमानजी ने भी सुग्रीव की रक्षा करने का वचन दिया और इस प्रकार उनकी शिक्षा पूरी हो गई। ○○○

प्रेरक लघुकथा

जो करूँ, सो प्रभु सेवा

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

एक बार सुबह भूख लगने पर हनुमानजी सीता माता के पास गए। उन्होंने माँ से कुछ खाने के लिये माँगा। सीताजी ने कहा, ''हनुमन्त, तुम्हें इतने सबेरे भूख लगी है। अभी तो मेरा स्नान भी नहीं हुआ है। थोड़ा रुको, मैं स्नान करने के बाद तुम्हारे खाने की व्यवस्था करती हूँ।'' हनुमानजी प्रतीक्षा करने लगे।

स्नान करने के बाद सीता माता जब बाहर आईं, तो उनकी माँग में सिन्दूर की रेखा देखकर केसरीनन्दन ने कौतुहलता से पूछा, ''माँ! आप अपनी माँग में ये सिन्दूर क्यों लगाई हुई हैं?'' जगज्जननी सीता माता ने उत्तर दिया, ''इसे लगाने से तुम्हारे स्वामी की आयु बढ़ती है।'' इतना कहकर वे रसोईघर में चली गईं और हनुमानजी सीता माता के शृंगार-कक्ष में जा पहुँचे। वहाँ रखा सारा सिन्दूर उन्होंने अपने शरीर में लगा लिया।

जब हनुमानजी बाहर आये, तो सबसे पहले उन्हें भरतजी मिले। हनुमानजी की ऐसी दशा देखकर भरतजी अपनी हँसी रोक न सके। वे जोर-जोर से हँसने लगे। उन्हें जोर-जोर से हँसते देखकर सभी लोग वहाँ आ पहुँचे। भगवान श्रीराम ने जब हनुमानजी का वह रूप देखा, तो उनसे पूछा, ''हनुमान! तुमने यह कैसा रूप बना लिया है?'' पवनपुत्र ने उत्तर दिया, ''माता सीता द्वारा अपनी माँग में सिन्दूर की एक रेखा खींचने पर आपकी आयु बढ़ती है। यदि मैं ढेर सारा सिन्दूर अपने शरीर पर लगाऊँगा, तो क्या आपकी आयु लम्बी नहीं होगी?'' भगवान श्रीराम हनुमान की निष्ठा से बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु ने हनुमान को आशीर्वाद दिया, ''तब तुम भी जान लो, जो लोग तुम्हारे शरीर में लगे सिन्दूर का टीका माथे पर लगाएँगे, वे मेरे प्रेम-भाजन होंगे।''

भक्त गुरु या भगवान की कृपादृष्टि बनाए रखने के लिए, उन्हें प्रसन्न रखने के लिये हर कर्म करने को तत्पर रहता है। उनके सुख में ही अपना सुख अनुभव करता है। महापुरुष कहते हैं – तत्सुखेन सुखित्वम्। ○○○

पृष्ठ १६४ का शेष भाग

जब आपको देखने गया था, तो अनेक लोगों की उपस्थिति के कारण मैं कुछ बोल नहीं सका।'' मुझे उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

परन्तु अगले दिन जब मैं अपने पहनने के वस्त्र लेने सेठजी के घर गया, तो देखा कि सेठजी लेटे-लेटे रो रहे हैं। एक दिन में ही उनका शरीर सूख गया था। मैंने सेठजी को खूब समझाते हुए कहा, ''इसी शहर में तो हूँ, हमेशा भेंट होती रहेगी।'' वे बोले, ''बाबाजी, तुम्हारा काफी पीने का सारा सरंजाम यहीं रह गया है। तुम इस प्रकार मुझे छोड़कर जा रहे हो, यह सोचकर मैं किसी भी प्रकार शान्त नहीं हो पा रहा हूँ। अब तो तुम यहाँ काफी भी नहीं पीयोगे? आज पीकर जाओ।''

काफी आयी। यह क्या! काफी में फिर वही तीखापन और तेल उतरा रहा था। एक चुस्की पीने के बाद ही मैं झण्डू भट के घर दौड़ा। वहाँ पहुँचते ही दस्त शुरू हो गया। भटजी सारी बातें सुनकर बोले, ''पहले दिन की बात मैंने आपको नहीं बतायी थी; काफी में जयपाल (croton) का बीज मिला हुआ था।'' इस बार भी मैंने उनकी बात पर विश्वास नहीं किया। आखिरकार भटजी ने जयपाल का बीज मँगवाया। जिह्वा से स्पर्श करने के बाद अब मुझे कोई शंका न रही। परन्तु उस दिन उस जरा-सा स्पर्श मात्र से ही मुझे दस्त होने लगे थे।

भटजी बोले, ''आपकी सलाहों के अनुसार सेठजी उठते-बैठते और धन खर्च करते थे। इसके ऊपर मन्दिर बनवा देने की भी बात हुई थी। कहीं सेठजी अपनी सारी सम्पत्ति बरबाद न कर डालें, इसीलिये आपको हटाने का – इस संसार से ही पूरी तौर से हटाने का प्रयास चल रहा है।'' **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१४)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

स्वामीजी के विषय में गुडविन आगे लिखते हैं, ''यह पहला स्थान हैं, जहाँ उन्हें आराम मिला है और वे शीघ्र स्वस्थ हो रहे हैं...उन्हें यहाँ अवतार के रूप में माना जाता है। आपको याद होगा कि भगवान श्रीकृष्ण ने (गीता में) कहा है कि जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है, तब जगत के उद्धार हेतु मैं अवतार लेता हूँ। सर्वत्र स्वामीजी को इसी प्रकार एक अवतार के रूप में देखा जा रहा है और मुझे यह सर्वथा उचित ही लगता है। अन्यथा वे जिस प्रकार कार्य कर रहे हैं, वैसा कर नहीं पाते ।''

वहाँ की ठण्डी जलवायु और शान्त दिनचर्या ने स्वामीजी के लिए टॉनिक का कार्य किया। गुडविन ने स्वामीजी के विषय में और उनकी आगामी यात्राओं के बारे में श्रीमती ओली बुल को लिखा था। साथ ही श्रीमती बुल ने उन्हें जो आर्थिक सहयोग का आश्वासन दिया था, उसका भी उल्लेख किया। गुडविन को अपनी यात्राओं का व्यय-भार किसी प्रकार चुकाना होता था और वे उसे मठ से नहीं लेना चाहते थे। १४ अप्रैल को उन्होंने देहरादून से लिखा था, ''दार्जिलिंग में स्वामीजी से विदा लिए मुझे एक सप्ताह अथवा दस दिन हुए । वहाँ उनका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा हो रहा था। उनकी इच्छानुसार मैं कलकत्ता लौटा । वहाँ स्वामी शिवानन्द जी हमारे साथ मिल गए और हम सब यहाँ पहुँचे। इस सप्ताह हम कुमारी मूलर के साथ अलमोड़ा जा रहे हैं...हम ऋषिकेश के मार्ग से जा रहे हैं और यह भारत के महान तीर्थस्थानों में से एक है...केदारनाथ से अलमोड़ा की यात्रा १५ दिनों की है...स्वामी निरंजनानन्द (जो इस समय अलमोड़ा में हैं) और मैं, हम दोनों वहाँ भी जाएँगे...स्वामीजी जहाँ भी मुझे भेजते हैं, वहाँ जाने के लिए मैं बाध्य हूँ, किन्तु अपनी यात्राओं के व्यय के लिए मठ पर निर्भर रहना मुझे बिल्कुल भी अच्छा नहीं लगता। आपने कृपापूर्वक मुझसे कुछ समय पहले कहा था कि ऐसी उपस्थिति उत्पन्न होने पर मैं आपको अवगत कराऊँ। यदि आपको ठीक लगे, तो इस उद्देश्य हेतु, केवल इसी उद्देश्य हेतु कुछ रुपए भेजें, तो मुझे प्रसन्नता होगी ।''

मई में स्वामीजी और गुडविन अलमोड़ा पहुँच चुके थे। नगर के आधे से भी अधिक लोग उत्साह और गर्वपूर्वक स्वामीजी के स्वागत के लिए उमड़ पड़े। ऐसा लगता है कि गुडविन अब तक सम्पूर्ण भारत में जो स्वामीजी का भव्य स्वागत हो रहा था, उसे देखने के अभ्यस्त हो गए हों। किन्तु गुडविन पहले जिस प्रकार सदा प्रसन्न रहते थे, उनमें कुछ मोह-भंग का भाव दिखाई देने लगा। श्रीमती ओली बुल को वे पत्र में लिखते हैं, ''मुझे लगता है कि (स्वामीजी) यह देखकर समझ गए हैं..., जिसके बारे में मैं कुछ समय से सोच रहा हूँ कि 'भारत' में वे बहुत कम कार्य कर सकेंगे। उनकी मुख्य भूमिका उनके पाश्चात्य कार्य में है। वहाँ उन्हें जो सफलता मिलेगी, उसका दस गुना प्रभाव यहाँ होगा। किन्तु जब वे अपने लोगों के बीच हैं, तो यह कहावत 'पैगम्बर का सम्मान उसके अपने देश में नहीं होता', सत्यापित हो रही है। लोग उनके पीछे दौड़ेंगे, हजारों 'जय विवेकानन्द' के नारे लगाएँगे और जब स्वामीजी बोलेंगे कि भारत का देवता चूल्हे का बर्तन है और यहाँ का धर्म पाकशाला है, तो लोग तालियाँ बजाएँगे, किन्तु ये ही लोग जब घर पर जाएँगे और किसी ने यदि इनके भोजन पर दृष्टि भी डाली, तो उसे पूरा फेंक देंगे। यहाँ कुछ उत्कृष्ट उद्यमी लोग हैं अवश्य, किन्तु अनेक लोग बुरी तरह से दुर्बल हैं और रसोईघर के कट्टर रीति-रिवाजों के अलावा उनका दूसरा कोई धर्म नहीं है। एक यूरोपीय के लिए यह चौंका देने वाली बात है।''

कुछ ही महीनों पहले गुडविन ने गर्वपूर्वक लिखा था कि वे स्थानीय लोगों के समान नीचे बैठकर खाते हैं। किन्तु उनके जितने भी नेक उद्देश्य क्यों न हों, उपरोक्त पत्र की अन्तिम पंक्ति उनके 'एक यूरोपीय' होने के दृढ़ तादात्म्य भाव को इंगित करती है। गुडविन ने चाहे कितना भी प्रयास क्यों न किया हो, किन्तु वे अपनी राष्ट्रीयता के मोह को भंग नहीं कर सके थे। लन्दन में गुडविन के साथ रहते समय स्वामीजी और स्वामी सारदानन्द ने भी उनके इस भाव को देखा था। किन्तु भारत में उनकी स्वदेश-भक्ति अधिक

बढ़चढ़ कर हो गई । शायद मन्दिरों और रसोईघरों में उनका प्रवेश वर्जित था, उसकी यह प्रतिक्रिया हो। श्रीमती बुल को अपनी शिकायत के बारे में उन्होंने आगे लिखा था, ''जब साहब को जानबूझ कर भोजन-कक्ष से बाहर रखा जाए, ऐसा स्थान जहाँ इंग्लैंड में भी रहते हुए वह इतनी माथापच्ची नहीं करता, तब किसी भी परस्पर मिलन और आत्मीयता की सम्भावना नहीं।'' गुडविन की स्वाभाविक प्रवृत्ति मित्रवत् और उदार थी, इसलिए उसके साथ म्लेच्छ के रूप में किया गया आचरण उसे बुरा लगा। स्वामीजी ने अगस्त में श्रीमती बुल को लिखा था, ''गुडविन अच्छा कार्य कर रहा है, किन्तु कभी-कभी वह भी (यहाँ म्लेच्छ के साथ जो अनुचित व्यवहार किया जाता है, उससे) दुखी हो जाता है और उसे मनाकर ठीक करना पड़ता है।''

भारत में स्वामीजी की उपस्थिति ही मानो गुडविन के लिए एकमात्र आश्रय-स्थल था। यदि स्वामीजी यहाँ न होते, तो शायद गुडविन शीघ्र ही यह देश छोड़कर चले जाते। किन्तु गुडविन हमेशा अपने गुरु के साथ रह नहीं पाते थे। जुलाई में स्वामीजी ने अचानक गुडविन को एक और अंग्रेजी पत्रिका आरम्भ करने के लिए मद्रास भेजा। गुडविन ने अल्मोड़ा से २८ जून को श्रीमती बुल को पत्र लिखा था, ''स्वामीजी की एक योजना यह है उनका एक मुखपत्र कलकता से (बंगाली में) और एक मद्रास से (अंग्रेजी में) निकले। उन्होंने आलासिंगा से अंग्रेजी पत्रिका आरम्भ करने के विषय में कहा है। वे मुझे इसका सम्पादक बनने का आग्रह कर रहे हैं । यदि आप मुझे क्षमा करें, तो मुझे कहने में प्रसन्नता होगी कि वे एक शिष्य के रूप में मुझ पर पूरा भरोसा करते हैं और वे जानते हैं कि मैं कभी भी उनसे अलग होने और स्वतन्त्र रहने का प्रयत्न नही करूँगा। स्वामीजी ने स्वयं भी अपनी इस योजना के बारे में हमें एक दिन कहा था।''

यह प्रस्तावित पत्रिका कभी निकल नहीं सकी। स्वामीजी के अनुरोध पर गुडविन ने 'ब्रह्मवादिन्' के लिए कार्य आरम्भ किया। गुडविन सदैव एक अथक कार्यकर्ता थे, उन्होंने न केवल पत्रिका के लिए कार्य किया, अपितु मद्रास में रामकृष्ण मठ की स्थापना में भी स्वामी रामकृष्णानन्द की सहायता की। गुडविन जो कोई भी कार्य लेते, पूरी निष्ठा के साथ करते। उन्होंने 'ब्रह्मवादिन्' के लेडरहेड पर १९ जुलाई को श्रीमती बुल को अपना अगला पत्र लिखा था, जिसमें स्वामीजी के उद्देश्यों के प्रति उनकी दृढ़ प्रतिबद्धता दृष्टिगोचर होती है, ''ब्रह्मवादिन् पत्रिका के लेख एवं सदस्यता, दोनों का क्षेत्र बढ़ाने के लिए स्वामीजी अत्यन्त व्यग्र हैं। इस बारे में उन्होंने मुझसे अनेक बार कहा है और मुझे लग रहा है कि इसे आगे बढ़ाने के लिए मैं कोई योजना बनाऊँ...''

पत्रिका आरम्भ करने में जो समस्याएँ आती हैं, उसका विस्तृत विवरण गुडविन इस पत्र में देते हैं, साथ ही उसके स्पष्ट समाधान भी बताते हैं। 'ब्रह्मवादिन्' में पाठकों की रुचि बढ़ाने हेतु गुडविन ने सुझाव दिया कि पत्रिका के प्रत्येक महीने में स्वामीजी के नए प्रवचन का समावेश हो। इससे न केवल पत्रिका के लेखों में उत्कृष्टता आएगी, अपितु स्वामीजी के प्रवचनों का भी स्थायी संग्रह हो सकेगा। गुडविन ने श्रीमती बुल को लिखा था कि वे स्वामीजी के साथ शरद् ऋतु के प्रवास में उत्तर भारत जाने वाले हैं और वहाँ स्वामीजी के नए प्रवचन लिपिबद्ध करने से पत्रिका को नवीन सामग्री प्राप्त होगी।

विश्व के अन्य वेदान्त केन्द्रों के समाचारों को भी पत्रिका में देने का गुडविन ने सुझाव दिया। उनका कहना था कि यह आवश्यक है, क्योंकि इससे 'विभिन्न राष्ट्रीय तत्त्व दृढ़तापूर्वक एक साथ जुड़ेंगे, जिनका उल्लेख यहाँ किया जाएगा।' वे पत्र में आगे लिखते हैं, ''वे लोग 'ब्रह्मवादिन्' का जितना कार्य करने के लिए कहेंगे, मैं उतना करूँगा, क्योंकि स्वामीजी ने मुझे स्पष्ट रूप से कहा है कि पत्रिका के प्रति उनका प्रबल आग्रह है और वे इसकी सफलता के लिए चिन्तित हैं।

''मुझे लगता है कि हमें हार्वर्ड के लोगों से यदा-कदा उदारतापूर्वक लेख प्राप्त करने की सभी आशाएँ असम्भव स्वप्नों की कारा में डाल देनी चाहिए, किन्तु वह सचमुच एक मूल्यवान सहायता होगी।

''इस डाक से मैंने आपको मद्रास के कार्यकर्ताओं और स्वामी रामकृष्णानन्द का चित्र भेजा है...इस समय मैं मद्रास में उनके कार्य को सुव्यवस्थित करने में उनकी सहायता कर रहा हूँ। वास्तव में इसके पहले सुगठित रूप से कार्य नहीं हो रहा था । वे यहाँ चार महीने से हैं, पर असल में कुछ नहीं हो रहा है।

'' 'ब्रह्मवादिन्' में मेरा लेख देखकर आपको हँसी आएगी। उन्हें लेखक मिलने में कठिनाई हो रही थी और उन्होंने मुझे लिखने के लिए कहा। किन्तु मद्रास के विशिष्टाद्वैतवादी लोगों के लिए यह लेख अधिक अद्वैती हो गया। इस प्रकार के विशेषकर ईश्वर विषयक विचार अभिव्यक्त करने पर वे क्षुब्ध हो गए । **(क्रमशः)**